नगरीय संस्थाओं पर राज्य का नियन्त्रण

नगरीय स्वायत्त शासन की संस्थाएं सार्वभौम शक्ति प्राप्त संस्थाएं नहीं होती, वे देश की सरकार द्वारा सृजित संस्थाएं होती हैं। इन संस्थाओं का निर्माण एकात्मक शासन व्यवस्था वाले देशों में केन्द्रीय सरकार द्वारा और संघात्मक शासन व्यवस्था वाले देशों में प्रायः प्रान्तों या राज्यों की सरकारों के द्वारा किया जाता है इसलिए उन पर नियंत्रण भी उन्हीं सरकारों के द्वारा किया जाता है, जिनके आदेश से उनकी संरचना की गई है। स्थानीय संस्थाओं और सरकार के सम्बन्ध के इस प्रश्न में एक और प्रश्न भी अन्तर्निहित है और वह है स्थानीय संस्थाओं की स्वायत्तता का आयाम। स्थानीय संस्थाओं को स्वायत्त शासन की संस्थाएं भी कहा जाता है जिन्हें राज्य द्वारा निर्देशित सीमा क्षेत्र में कार्य करते हुए अपने नागरिकों की स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती है। दूसरे शब्दों में, यह व्यक्त किया जा सकता है कि इन संस्थाओं से अपने सृजनकारी विधान द्वारा इंगित वैधानिक सीमाओं में स्वायत्त कार्यकरण की अपेक्षा की जाती है और उसी विधान में इंगित निर्देशों के अनुसार ये संस्थाए राज्य सरकार द्वारा नियंत्रित होती हैं। किन्तु राज्य के इस नियंत्रण से उनकी स्वायत्तता सदैव प्रभावित होती है इसलिए नियंत्रण का यह प्रश्न एक प्रकार से इन संस्थाओं की स्वायत्तता के सवाल भी से जुड़ा हुआ है।

भारत के संविधान के अन्तर्गत स्थानीय स्वायत्त शासन की व्यवस्था का दायित्व राज्य सरकारों पर रखा गया है। संविधान के अन्तर्गत राज्यों को प्रदत्त विधायी शक्तियों में यह अधिकार महत्त्वपूर्ण तरीके से राज्य सूची में प्रारम्भ में ही गिना दिया गया है।[1] अपने इसी दायित्व के अन्तर्गत सभी राज्य सरकारें विधान द्वारा स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाओं का निर्माण करती हैं। राज्य के जिस अधिनियम द्वारा स्थानीय शासन की सृष्टि की जाती है वही अधिनियम इन संस्थाओं की स्वायत्तता की सीमा रेखा निर्धारित कर देता है। यही अधिनियम राज्य सरकार द्वारा नियंत्रण की क्रिया–विधि को भी निश्चित करता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि अन्य देशों की भांति भारत में भी स्थानीय नगरीय स्वायत्त शासन की संस्थाएं सार्वभौमिक शक्ति प्राप्त

Scanned with CamScanner

इकाइयां नहीं हैं। ये संस्थाएं राज्यों की विधानसभाओं द्वारा बनाए गए कानूनों के अन्तर्गत कार्य करती हैं। कानून द्वारा ही इनका अधिकार क्षेत्र, संरचना और उत्तरदायित्वों का स्पष्ट निर्धारण कर दिया जाता है। भारत में ही नहीं, अपितु संसार के सभी देशों में स्थानीय संस्थाओं पर सरकार का नियंत्रण विभिन्न माध्यमों द्वारा किया जाता है। ऐसे नियंत्रण का उद्देश्य इन संस्थाओं को संरक्षण प्रदान करना और अनुशासित रखना होता है।

ब्रिटिश शासनकाल में भारत में स्थानीय शासन का उद्देश्य यह था कि भारतवासियों की सन्तुष्टि के लिए स्थानीय शासन को बनाए रखा जाए किन्तु व्यवहार में उसे सीमित और नियन्त्रित रखा जाए। फलतः स्थानीय शासन के मामलों में व्यापक नियंत्रण और हस्तक्षेप जारी रहा।

किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस स्थिति में आधारभूत परिवर्तन हो गया। उत्तरदायी शासन प्रणाली की स्थापना के बाद यह अनुभव किया गया कि स्थानीय शासन को देश में सृजनात्मक कार्य कलाप के केन्द्र के रूप में विकसित होना चाहिए। केन्द्रीय तथा राज्य स्तरों पर हमारा लोकतंत्र तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक कि स्थानीय स्तर पर सच्चे लोकतंत्र का विकास नहीं हो। वस्तुतः नागरिक जीवन में राज्य की भूमिका दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, जिसका स्पष्ट कारण यह है कि राज्य से जनसाधारण की अपेक्षाएं भी बढ़ती जा रही हैं। इसी कारण नागरिकों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक विकास की विविध योजनाओं को सरकारें अपने हाथ में ले रही हैं। इन योजनाओं की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि इस दिशा के प्रयत्नों में स्थानीय शासन का भी समुचित सहयोग लिया जाए और यह तभी संभव हो सकता है जब राज्य सरकार उस पर विश्वास करे और उसे अपना साझीदार समझे।

नियंत्रण का अर्थ

स्थानीय संस्थाओं पर नियंत्रण का अभिप्राय यह है कि जिस सत्ता द्वारा स्थानीय निकाय का गठन किया गया है उसी निर्माणकारी सत्ता द्वारा उस संस्था पर निरीक्षण और नियंत्रण का दायित्व रहता है। जैसे–भारत की केन्द्रीय सरकार, जिसके संसदीय अधिनियम द्वारा दिल्ली नगर निगम का गठन हुआ है, दिल्ली नगर निगम पर नियंत्रण और पर्यवेक्षण के सम्पूर्ण अधिकार रखती है। इसी तरह राज्य सरकारों और उनके विधान मंडलों द्वारा पारित अधिनियम से जिन स्थानीय संस्थाओं की सृष्टि होती है, उन पर नियंत्रण रखने का अधिकार राज्य सरकारों को होता है। राजस्थान के सभी नगर निकायों, जिनका निर्माण राज्य विधानांग द्वारा हुआ है, पर नियंत्रण का सम्पूर्ण अधिकार राज्य सरकार का है। इस प्रकार स्थानीय संस्थाओं पर सरकारी नियंत्रण का अभिप्राय है, उस सत्ता का नियंत्रण जिसके द्वारा उस संस्था की रचना की गई है।

नियंत्रण का औचित्य : विभिन्न विचारधाराएं

स्थानीय संस्थाओं और सरकार का सम्बन्ध क्या होना चाहिए या स्थानीय

Scanned with CamScanner

कती हैं। जैसा कि पूर्व में उल्लेख
ध्यम से लेखों के निर्धारण के लिए
ार ने उसका प्रयोग करते हुए इस
यक प्रपत्र विनिश्चित कर दिये गए
अपने आय और व्यय के लेखों का
सलिए की जाती है जिससे सम्पूर्ण
रा आय–व्यय का जो विवरण रखा
ें जो नियम इस हेतु बनाए गए है
द बुकों के हिसाब, प्रतिभूति तथा
रण और अग्रिम, निर्माण कार्यों पर
डार में सामान की खरीद, भौतिक
है।[21]

मि के सम्बन्ध में यह द्रष्टव्य है कि
अंकेक्षण (ऑडिट) करने के लिए
एक्ट 1954 राज्य के विधान मडल
रकार ने नियम निर्धारित किए है
दित किया जाता है। अंकेक्षण या
ें में रह गई कमी का ज्ञान होता है
का अवसर मिलता है।

जो अंकेक्षण किया जाता है उसके
क किए गए निरीक्षण के माध्यम से
ता है। राजस्थान में स्थानीय वित्त
तिशत अंकेक्षण करता है और भारत
पर कुछ परीक्षण करता है। वार्षिक
एं और कार्यक्रम इन संस्थाओं को
भी अंकेक्षण किया जाता है। अंकेक्षण
दायित्वों का विवरण भी उच्च सत्ता
ी संस्थाओं के द्वारा जिन निर्धारित
अंकेक्षण करना अंकेक्षण विभाग का
न्तर्निहित असंगतियां उत्पन्न हो गई
कार्य अपना वांछित प्रभाव नही छोड़
अनुपालना हेतु प्रेषित किए जाते है,
तत्परता नहीं दिखाई जाती है, इस
रही है।

समीक्षा

सारांशतः स्पष्ट तौर पर यह परिलक्षित होता है कि पंचायती राज संस्थाओं के कुशल कार्यकरण को सुनिश्चित करने में राजकीय नियत्रण की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। किन्तु अनुभव यह दर्शाता है कि विभिन्न कारणों से यह नियत्रण प्रभावी नही हो पाता है। इस सम्बन्ध में राजस्थान सरकार द्वारा 1964 में नियुक्त सादिक अली समिति[22] तथा 1971 में नियुक्त गिरधारी लाल व्यास समिति[23] ने पंचायती राज संस्थाओं की कार्य प्रणाली की समीक्षा के सम्बन्ध में जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था उनमें इन संस्थाओं पर राज्य सरकार के नियंत्रण के सम्बन्ध में भी सुझाव दिए गए थे। इन समितियों का यह मत था कि नियंत्रण की प्रवर्तित व्यवस्था अपूर्ण एवं अनुपयुक्त है। इस नियंत्रण व्यवस्था की सबसे प्रमुख कमी इन समितियों द्वारा यह इंगित की गई थी। नियंत्रण की व्यवस्था राज्य स्तर पर केन्द्रित होती है। आम तौर पर तुरन्त कार्यवाही करना इसके कारण कठिन हो जाता है तथा जब तक कार्यवाही होती है तब तक स्थिति बिल्कुल भिन्न हो जाती है। अतः इन समितियों ने सुझाव दिया था कि इन संस्थाओं पर नियंत्रण के अधिकार जिला स्तर पर किसी स्वतंत्र सस्था को दिए जाने चाहिए। इस सम्बन्ध में सादिक अली का यह सुझाव था कि जिला स्तर पर नियंत्रणकारी सस्था के रूप में जिला न्यायाधिकरण का गठन कर दिया जाना चाहिए।

पंचायती राज सस्थाओं के कार्यकरण के अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि राज्य में पदासीन सरकार राजनीतिक कारणों से इन सस्थाओं के साथ उचित व्यवहार नही कर सकी है। 73वें संविधान संशोधन से पूर्व इन संस्थाओं के चुनाव कराने में राज्य सरकारों ने अन्तर्निहित राजनीतिक कारणों से अनावश्यक विलम्ब किया है। यही नहीं, पदासीन राज्य सरकार ने पंचायत समिति तथा जिला परिषद् के पदाधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही करने में राजनीतिक भेदभाव भी दर्शाया है। इन कारणों से भी पंचायत राज की संस्थाओं के कुशल कार्यकरण में न केवल बाधा उपस्थित हुई है, अपितु जनता में यह धारणा भी बनी है कि इन संस्थाओं को सही तरीके से कार्य करने देने में राज्य सरकार की स्वयं की कोई अधिक गम्भीर रुचि नहीं है। यद्यपि 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से उपर्युक्त कारणों से उत्पन्न स्थिति को परिष्कृत करने का प्रयास किया गया है। परन्तु अभी भी यह कहा जा सकता है कि वर्तमान की नियंत्रण व्यवस्था भी अप्रभावी है।

यदि लोकतत्र के आधार को सशक्त बनाना और राजनीतिक सत्ता का सबसे नीचे के स्तरों पर हस्तातरण करना अभीष्ट है तो इन संस्थाओं के कुशल कार्यकरण को सुनिश्चित करने के लिए राजनीतिक सहमति के आधार पर कुछ सुनिश्चित मानदंडों का विकास किया जाना बहुत आवश्यक है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब तक इन संस्थाओं के काम काज पर उच्चतर संस्थाओं का, जिनमें राज्य सरकार भी सम्मिलित है, पर्याप्त और प्रभावी नियंत्रण स्थापित नहीं किया जाएगा तब तक ये संस्थाएँ न तो लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का सटीक माध्यम बन सकेंगी और न ही इन आकांक्षाओं की पूर्ति कर पाएंगी।

Scanned with CamScanner

करने के लिए आवश्यक रीति का निर्धारण कर सकती है। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, राजस्थान के अधिनियम के माध्यम से लेखों के निर्धारण के लिए जो शक्ति राज्य सरकार को दी गई है राज्य सरकार ने उसका प्रयोग करते हुए इस हेतु नियम बनाए है और इन नियमों में ऐसे आवश्यक प्रपत्र विनिश्चित कर दिये गए है जिन प्रपत्रों में पंचायती राज की संस्थाओं को अपने आय और व्यय के लेखों का विवरण रखना अपेक्षित होता है। ऐसी व्यवस्था इसलिए की जाती है जिससे सम्पूर्ण राज्य मे पचायती राज की समस्त इकाइयों के द्वारा आय–व्यय का जो विवरण रखा जाये उसमें एकरूपता बनी रह सके। राजस्थान में जो नियम इस हेतु बनाए गए है उनमें इन संस्थाओं के रोकड़ के विनियमन, रसीद बुकों के हिसाब, प्रतिभूति तथा कर्मचारियों के वेतन और भत्ते, राशि के स्थानांतरण और अग्रिम, निर्माण कार्यों पर व्यय, राजस्व का प्रत्यायोजन, स्थायी अग्रिम, भंडार में सामान की खरीद, भौतिक सत्यापन इत्यादि के विषय में प्रावधान किया गया है।[21]

(5) अंकेक्षण : वित्तीय नियंत्रण की पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में यह द्रष्टव्य है कि राजस्थान में पंचायती राज संस्थाओं के लेखों का अंकेक्षण (ऑडिट) करने के लिए पृथक् अधिनियम राजस्थान लोकल फण्ड ऑडिट एक्ट 1954 राज्य के विधान मंडल ने पारित किया है और उसके अन्तर्गत राज्य सरकार ने नियम निर्धारित किए है जिनके अनुसार इन संस्थाओं का अंकेक्षण निष्पादित किया जाता है। अंकेक्षण या लेखा परीक्षण के माध्यम से इन संस्थाओं के कार्यों में रह गई कमी का ज्ञान होता है और उनमें हो रही अनियमितताओं को दूर करने का अवसर मिलता है।

इन संस्थाओं के लेखों का नियमानुसार जो अंकेक्षण किया जाता है उसके माध्यम से तथा इन संस्थाओं के लेखों पर अचानक किए गए निरीक्षण के माध्यम से प्रभावी पर्यवेक्षण और नियत्रण कर पाना संभव होता है। राजस्थान में स्थानीय वित्त अंकेक्षण विभाग इन संस्थाओं के लेखों का शत–प्रतिशत अंकेक्षण करता है और भारत का नियंत्रक और महालेखा परीक्षक नमूने के तौर पर कुछ परीक्षण करता है। वार्षिक लेखों के अंकेक्षण के साथ–साथ जो परियोजनाएं और कार्यक्रम इन संस्थाओं को कार्यान्वयन हेतु हस्तान्तरित किए जाते हैं उनका भी अंकेक्षण किया जाता है। अंकेक्षण के माध्यम से इन संस्थाओं की परिसंपत्तियों तथा दायित्वों का विवरण भी उच्च सत्ता को प्रेषित किया जाता है। पंचायती राज की सभी संस्थाओं के द्वारा जिन निर्धारित प्रपत्रों में लेखा रखा जाता है उनका नियमानुसार अंकेक्षण करना अंकेक्षण विभाग का दायित्व है। इस कार्य में विगत वर्षों में कुछ अन्तर्निहित असंगतियां उत्पन्न हो गई प्रतीत होती है जिसके कारण अंकेक्षण का यह कार्य अपना वांछित प्रभाव नहीं छोड़ पा रहा है। जो अंकेक्षण प्रतिवेदन संस्थाओं को अनुपालना हेतु प्रेषित किए जाते हैं, संस्था के स्तर पर उनकी अनुपालना में कोई तत्परता नहीं दिखाई जाती है, इस कारण स्थिति बहुत असंतोषप्रद बनती चली जा रही है।

Scanned with CamScanner

किए गए अधिकारियों के वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन उन संस्थाओं से मगवाए जाते है जहां वे प्रतिनियुक्ति पर होते हैं। पंचायत समिति के विकास अधिकारी द्वारा तकनीकी प्रसार अधिकारियों के गोपनीय प्रतिवेदन तैयार किए जाते है और उन पर विभाग के उच्च अधिकारियों द्वारा टिप्पणी लिखी जाती है। अधिकारियों के वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन चूंकि इस प्रकार के तकनीकी प्रशासकीय नियंत्रणकर्ता अधिकारियों द्वारा आरम्भिक रूप से भरे जाते हैं इसलिए इन कर्मचारियों को सदैव यह ध्यान रखना होता है कि क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से वे पंचायत समिति या जिला परिषद् में प्रतिनियुक्ति पर हैं अतः उनका यह प्राथमिक दायित्व है कि वे अपने प्रशासकीय नियंत्रणकर्ता अधिकारी के आदेश का पालन करें। इस प्रकार जो वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन संस्थाओं से भरकर आगे भेजे जाते हैं। उनके माध्यम से उन कर्मचारियों के भविष्य में पदोन्नति इत्यादि के अवसर निर्धारित होते हैं।

(द) वित्तीय नियंत्रण

यह सुविदित है कि वित्त किसी भी संगठन के संचालन में ईंधन का कार्य करता है। पंचायती राज संस्थाओं के सम्बन्ध में भी वित्त की भूमिका उनकी सफलता और असफलता के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। राज्य सरकार चूंकि पंचायती राज संस्थाओं की रचना करती है इसलिए इनके कुशल कार्य निष्पादन के लिए अनुदान के रूप में न केवल वित्तीय सहायता देती है अपितु इन संस्थाओं द्वारा किए जाने वाले करारोपण के प्रस्तावों को पूर्व स्वीकृति भी प्रदान करती है। इसी कारण राज्य सरकार इन संस्थाओं पर वित्तीय पर्यवेक्षण के माध्यम से भी नियंत्रण कर पाने में सक्षम होती है। इन संस्थाओं के वित्तीय प्रशासन पर नियंत्रण के लिए अंकेक्षण विभाग एक प्रकार से ऐसा नियंत्रण प्रदान करता है जिसे हम किसी बाह्य संगठन द्वारा प्रतिपादित नियंत्रण का तरीका मान सकते हैं।

राजस्थान में पंचायती राज संस्थाओं के प्रशासन को निर्धारित करने वाले राजस्थान पंचायत राज अधिनियम 1994, इन संस्थाओं के करारोपण और निधि ग्रहण की शक्ति, आय तथा व्यय, ऋण देने और लेने की शक्ति, बजट तथा लेखे और अंकेक्षण अर्थात् उनके लेखा परीक्षण के सम्बन्ध में आवश्यक प्रावधान करता है। इस सम्बन्ध में ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के "आय–व्यय" से सम्बन्धित अध्याय में वांछित विवरण विस्तार से दिया जा चुका है।

राजस्थान में राज्य सरकार द्वारा पंचायती राज संस्थाओं पर वित्तीय नियंत्रण हेतु निम्नांकित तरीके अपनाये जाते हैं :

(1) आय का नियमन : राजस्थान में पंचायती राज संस्थाओं की आय के समस्त स्रोतों का सम्बन्धित अधिनियम में प्रावधान किया गया है। इन संस्थाओं के द्वारा किन करों का आरोपण किया जाएगा, उन्हें राजकीय अनुदान और वित्तीय सहायता, उनको सम्पत्ति के प्रबन्ध से आय, उधार, दान इत्यादि स्रोतों से अधिनियम के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं को आय हो सकती है और कोई भी संस्था उनसे

Scanned with CamScanner

तकनीकी परिवर्तन नही किया जावे। सर्वप्रथम भारतवर्ष में 1952 में जब सामुदायिक विकास कार्यक्रम को लागू किया गया था उस समय ही यह उद्देश्य निर्धारित कर लिया गया था कि ग्रामीण क्षेत्रों की कृषि व्यवस्था को अधिक उत्पादनकारी बनाने के लिए, कृषि हेतु विकसित तकनीक को अपनाना होगा। इसके पश्चात् जब देश के विभिन्न राज्यों में पंचायतीराज की संस्थाओं का विकास हुआ तो पचायत समितियों में अनेक प्रसार अधिकारी नियुक्त किए गए जो किसी न किसी क्षेत्र में विशेषज्ञ थे। किन्तु इन विषय-विशेषज्ञों की सेवाएं एक सामान्यज्ञ प्रशासनिक खड विकास अधिकारी के अधीन रखी गई हैं। पंचायत समितियों में उस प्रकार नियुक्त तकनीकी प्रसार अधिकारी दोहरी नियंत्रण व्यवस्था के अन्तर्गत रखे गए। तकनीकी रूप से इन अधिकारियों पर उनके विशेषज्ञ उच्चाधिकारी का और प्रशासकीय दृष्टि से उन पर खंड विकास अधिकारी का नियंत्रण स्थापित किया गया। पंचायती राज संस्थाओं में जो भी तकनीकी विषय विशेषज्ञ नियुक्त किए जाते हैं वे मूलतः राज्य सरकार के विभिन्न विभागों में सेवारत कर्मचारी होते हैं और पंचायत राज की संस्थाओं में उन्हें प्रतिनियुक्त किया जाता है। राज्य सरकार अपने सम्बन्धित विभागीय उच्चाधिकारियों के माध्यम से इन अधिकारियों पर तकनीकी नियंत्रण का प्रयोग करती है।

तकनीकी पर्यवेक्षण और नियंत्रण के तरीके

पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना के पश्चात् ऐसी अनेक तकनीकी योजनाओं के कार्यान्वयन का दायित्व उन्हें पूर्ण रूप से या आंशिक तौर पर दे दिया गया जिनके निष्पादन के लिए पूर्व में राज्य सरकार के विभिन्न तकनीकी विभाग उत्तरदायी होते थे। इस तरह, तकनीकी विभागों के द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को हस्तान्तरित तकनीकी कार्यों पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण के लिए प्रायः निम्नांकित विधियों का प्रयोग किया जा रहा है :[20]

(1) योजनाओं और कार्यक्रमों के लिए तकनीकी अनुमोदन प्रदान करना : पंचायती राज के विभिन्न स्तरों पर कार्यरत तकनीकी संस्थाएं जो कार्यक्रम और योजनाएं बनाती हैं, प्रायः उन सभी को राज्य की प्रशासनिक और तकनीकी स्वीकृति के लिए भेजना होता है। सरकार और उसके तकनीकी विभाग इन संस्थाओं द्वारा प्रेषित ऐसे कार्यक्रमों को तकनीकी दृष्टि से परीक्षण करने के पश्चात् उन्हें स्वीकृति या अस्वीकृति प्रदान करते हैं। राजस्थान में पंचायती राज की मध्यवर्ती इकाई 'पंचायत समिति' जो कि विकास कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने की कार्यकारी संस्था है, कोई भी ऐसा तकनीकी कार्यक्रम, जिसकी लागत तीन हजार से ऊपर हो, अपने स्तर पर जब तक क्रियान्वित नहीं कर सकती जब तक, उसे राज्य सरकार के तकनीकी विभाग की स्वीकृति इस हेतु प्राप्त न हो जाए। इस प्रावधान का व्यवहार में परिणाम यह होता है कि प्रायः सभी तकनीकी कार्यक्रम जो पंचायत समिति के द्वारा तैयार किए जाते हैं उनकी लागत चूंकि तीन हजार से प्रायः ऊपर ही होती है इसलिए उनकी स्वीकृति के लिए राज्य सरकार को प्रेषित करना ही होता है। इन संस्थाओं द्वारा राज्य सरकार को

Scanned with CamScanner

का निर्देश देते हुए आज्ञा जारी कर सकती है।[12]

(iv) अविश्वास प्रस्तावों का कार्यान्वयन : पंचायत राज की विभिन्न संस्थाओं के गैर सरकारी अर्थात् निर्वाचित पदाधिकारियों के विरुद्ध प्रस्तुत किए जाने वाले अविश्वास प्रस्तावों की प्रक्रिया का विवरण नए अधिनियम की धारा 37 में स्पष्ट रूप से दिया गया है। इस प्रकार अविश्वास प्रस्ताव जब नियमानुसार पारित हो जाता है तो उसके कार्यान्वयन का दायित्व प्रायः राज्य सरकार पर आ जाता है। अविश्वास प्रस्ताव के पारित होने की प्रक्रिया और उसके पारण के पूर्व भी पदाधिकारियों द्वारा अपने पद पर बने रहने के प्रयासों तथा पारित सूचना के पश्चात् भी न्यायपालिका द्वारा हस्तक्षेप के कारण इस प्रकार की प्रक्रिया में पदाधिकारियों को हटाने की समस्या अपने आप में जटिल स्वरूप धारण कर लेती है। ऐसी समस्त परिस्थितियों में अनेक बार राज्य सरकार के समक्ष भी विकट संकट उपस्थित हो जाता है क्योंकि एक ओर तो नियमानुसार अविश्वास का प्रस्ताव पारित हो जाता है और दूसरी ओर प्रस्ताव के पारित होने की प्रक्रिया के पूर्व और पश्चात् न्यायालय द्वारा स्थगन आदेश जारी कर दिए जाते हैं।

राजस्थान के नवीन पंचायत राज अधिनियम 1994 में प्रावधान है कि ग्राम पंचायत के सरपंच व उपसरपंच, पंचायत समिति के प्रधान और उपप्रधान तथा जिला परिषद् के प्रमुख और उपप्रमुख के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव का लिखित नोटिस निर्धारित प्रपत्र में सदस्यों के कम से कम एक–तिहाई सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित, सक्षम प्राधिकारी को प्रस्तुत किया जाएगा। इसके पश्चात् सक्षम प्राधिकारी उसकी सूचना सम्बन्धित लोगों को देगा और उस प्रस्ताव पर विचार करने के लिए निश्चित तरीके से सम्बन्धित पंचायत राज संस्था की बैठक तीस दिन के भीतर आमंत्रित करेगा। इस प्रकार की बैठक के लिए सदस्यों को 15 दिन की सूचना भी दी जाएगी। ऐसी बैठक की अध्यक्षता स्वयं सक्षम प्राधिकारी या उसके द्वारा अधिकृत अधिकारी करेगा। यह प्रस्ताव यदि कुल सदस्यों के दो–तिहाई सदस्यों के समर्थन से पारित हो जाता है तो पारित प्रस्ताव की सूचना कार्यालय के नोटिस बोर्ड पर लगाई जाएगी तथा उसी दिन से सम्बन्धित पदाधिकारी अपना पद रिक्त कर देंगे।

(v) पदाधिकारियों और सदस्यों को पदमुक्त करना : पंचायत राज से सम्बन्धित अधिनियमों में इन संस्थाओं के सदस्यों की योग्यता का भी उल्लेख किया जाता है। यदि सदस्यगण निर्वाचित होते समय या उसके पश्चात निर्धारित योग्यताओं में से किसी अयोग्यता के शिकार हो जाते हैं तो राज्य सरकार और उसके अधिकृत पदाधिकारियों को अधिनियम यह शक्ति प्रदान करता है कि वे उनके विरुद्ध आवश्यक कार्यवाही कर सकते हैं। राजस्थान में पंचायत राज अधिनियम 1994 में ग्राम पंचायत के पंच व अन्य सस्थाओं में सदस्यों के लिए अर्हताओं का उल्लेख किया गया है।[13]

अधिनियम यह प्रावधान भी करता है कि यदि समुचित जांच के पश्चात् यह निश्चित हो जाता है कि सम्बन्धित पदाधिकारियों एवं सदस्यों ने अधिनियमों के

ायत राज की विभिन्न संस्थाओं
विरुद्ध प्रस्तुत किए जाने वाले
यम की धारा 37 में स्पष्ट रूप
नेयमानुसार पारित हो जाता है
र पर आ जाता है। अविश्वास
के पूर्व भी पदाधिकारियों द्वारा
पश्चात् भी न्यायपालिका द्वारा
कारियों को हटाने की समस्या
समस्त परिस्थितियों में अनेक
हो जाता है क्योंकि एक ओर
है और दूसरी ओर प्रस्ताव के
द्वारा स्थगन आदेश जारी कर

1994 में प्रावधान है कि ग्राम
धान और उपप्रधान तथा जिला
प्रस्ताव का लिखित नोटिस
सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित, सक्षम
सक्षम प्राधिकारी उसकी सूचना
करने के लिए निश्चित तरीके
के भीतर आमंत्रित करेगा। इस
चना भी दी जाएगी। ऐसी बैठक
अधिकृत अधिकारी करेगा। यह
मर्थन से पारित हो जाता है तो
लगाई जाएगी तथा उसी दिन

क्त करना : पंचायत राज से
योग्यता का भी उल्लेख किया
सके पश्चात निर्धारित योग्यताओं
ज्य सरकार और उसके अधिकृत
है कि वे उनके विरुद्ध आवश्यक
अधिनियम 1994 में ग्राम पंचायत
उल्लेख किया गया है।[13]
के पश्चात् यह
यों के

प्रावधान और राज्य सरकार द्वारा प्रवर्तित नियमों का उल्लंघन किया है या किसी प्रकार का दुराचार, जिसमें नैतिक दुराचार भी सम्मिलित है, के दोषी पाए जाते हैं, या अपने कर्तव्य की उपेक्षा करते हैं या उन्होंने निरन्तर कार्य करना बंद कर दिया है तो राज्य सरकार उन्हें पद मुक्त करने का निर्देश दे सकती है। अधिनियम के अन्तर्गत राजस्थान में यह शक्ति राज्य के पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग में निहित है जिसका प्रयोग यह सम्बन्धित जिलाधीश और उपजिला विकास अधिकारी के माध्यम से करता है। राजस्थान में सदस्यों के सम्बन्ध में भी कार्यवाहियों के सम्बन्ध में अधिनियम की धारा 20, 21, 22, 37, 38, 39 व 40 के प्रावधान सभी पंचायती राज संस्थाओं के सदस्यों व पदाधिकारियों पर लागू होते है।[14] इस संदर्भ में अब तक जो निर्णय न्यायालय द्वारा किए गए हैं उन निर्णयों में सदस्यों की योग्यता में निर्दिष्ट इस शर्त को स्पष्ट किया गया है कि सदस्यों को साधारणतया उस क्षेत्र में रहने का अर्थ क्या लगाया जाता है? इसी प्रकार किसी सदस्य द्वारा दो पद धारण न करना, निर्वाह सम्बन्धी अयोग्यता, लगातार पांच बैठकों में अनुपस्थित रहना, तथा जिला परिषद् द्वारा अध्ययन केन्द्र पर प्रशिक्षण के लिए मनोनीत किए जाने पर न जाना इत्यादि कारणों से सदस्यों की अपात्रता का स्पष्टीकरण भी इन नियमों में दिया गया है।[15]

(vi) पंचायती राज संस्थाओं द्वारा पारित प्रस्तावों का स्थगन/निरस्तीकरण: राज्य सरकार का नियंत्रण सम्बन्धी अधिकार है कि वह पंचायती राज की संस्थाओं द्वारा पारित प्रस्तावों के कार्यान्वयन को जिला विकास अधिकारी के माध्यम से या तो स्थगित कर सकती है या आवश्यकता होने पर उन्हें निरस्त भी करवा सकती है। यद्यपि इस आशय के अन्तिम आदेश राज्य सरकार द्वारा ही पारित किए जाते है, किन्तु तत्काल कार्यवाही करने के लिए इस सम्बन्ध में, सम्बन्धित जिलाधीश को अधिकृत किया जाता है। राजस्थान में, अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि राज्य सरकार लिखित आज्ञा द्वारा पंचायत समिति या उसकी किसी स्थायी समिति द्वारा, पारित किसी भी सकल्प अथवा आज्ञा को रद्द कर सकेगी, यदि उसकी राय में ऐसा संकल्प विधिवत् पारित नही किया गया है या उन शक्तियों के अतिरेक या दुरुपयोग की आशंका है जो अधिनियम द्वारा इस संस्था को प्रदान की गई है। ऐसा सकल्प राज्य सरकार उस परिस्थिति में भी निलम्बित कर सकती है यदि उसके निष्पादन से, मानव जीवन, स्वास्थ्य अथवा सुरक्षा का भय पैदा होने की संभावना हो या उससे शांति भंग हो जाने की आशंका हो।[16] राज्य सरकार ऐसी कार्यवाही करने से पूर्व, पंचायत समिति को, स्पष्टीकरण हेतु युक्तियुक्त अवसर देगी।[17] इसी प्रकार अधिनियम यह व्यवस्था भी करता है कि यदि, कलेक्टर की राय में, किसी संकल्प को इस आधार पर, कि उसके निष्पादन से मानव जीवन, स्वास्थ्य या सुरक्षा को खतरा उत्पन्न होने की संभावना है या शांति भंग होने की आशंका है, निलम्बन करने हेतु तत्काल कार्यवाही करना आवश्यक है तो वह लिखित आज्ञा द्वारा उस संकल्प को निलम्बित कर सकेगा और राज्य सरकार को रिपोर्ट कर सकेगा, जिसका विनिश्चय उस पर अन्तिम होगा।[18]

पंचायती राज संस्थाओं द्वारा जो सकल्प पारित किए जाते है उनके सम्बन्ध में

Scanned with CamScanner

दन उन संस्थाओं से मंगवाए जाते है
के विकास अधिकारी द्वारा तकनीकी
केए जाते हैं और उन पर विभाग के
। अधिकारियों के वार्षिक गोपनीय
कीय नियंत्रणकर्ता अधिकारियों द्वारा
रियों को सदैव यह ध्यान रखना होता
या जिला परिषद् में प्रतिनियुक्ति पर
ने प्रशासकीय नियंत्रणकर्ता अधिकारी
क गोपनीय प्रतिवेदन संस्थाओं से
कर्मचारियों के भविष्य में पदोन्नति

उन के संचालन में ईंधन का कार्य
ी वित्त की भूमिका उनकी सफलता
रकार चूंकि पंचायती राज संस्थाओं
ष्पादन के लिए अनुदान के रूप में
ओं द्वारा किए जाने वाले करारोपण
। इसी कारण राज्य सरकार इन
नियंत्रण कर पाने में सक्षम होती है।
लिए अंकेक्षण विभाग एक प्रकार से
ध संगठन द्वारा प्रतिपादित नियंत्रण

प्रशासन को निर्धारित करने वाले
थाओं के करारोपण और निधि ग्रहण
की शक्ति, बजट तथा लेखे और
आवश्यक प्रावधान करता है। इस
य" से सम्बन्धित अध्याय में वाछित

राज संस्थाओं पर वित्तीय नियंत्रण

चायती राज संस्थाओं की आय के
न किया गया है। इन संस्थाओं के
न्हें राजकीय अनुदान और वित्तीय
, दान इत्यादि स्रोतों से अधिनियम
ती है और कोई भी संस्था उनसे

भिन्न साधनों से आय नहीं कर सकती। यद्यपि करों के अतिरिक्त साधनों से होने वाली आय का अधिनियम में विस्तृत वर्णन नहीं किया गया है और इस सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा निर्मित जिन नियमों का ऊपर उल्लेख किया गया है उन्हीं के माध्यम से आय को विनियमित किया जाता है। जहां तक करारोपण की शक्ति का सम्बन्ध है उनके विषय में अधिनियम यह स्पष्ट प्रावधान करता है कि पंचायती राज की विभिन्न संस्थाएं किन-किन करों को आरोपित कर सकती हैं और उन्हें आरोपण से पूर्व वे राज्य सरकार की अनुमति भी प्राप्त करती हैं। इन संस्थाओं की आय-व्यय के सम्बन्ध में जो प्रावधान अधिनियम और नियमों में किए गए हैं उनसे यह प्रमाणित होता है कि राज्य सरकार इन संस्थाओं की आय के साधनों का अपने द्वारा निर्धारित नियमों के अन्तर्गत संचालन होता देखना चाहती है। इस तरह इन नियमों और विनियमों के माध्यम से राज्य सरकार और उसकी प्रशासनिक इकाइयां पंचायती राज की संस्थाओं पर वित्तीय नियंत्रण कर पाने में सक्षम होती हैं।

(2) बैंकिंग व्यवस्था का नियमन : पंचायती राज संस्थाओं की आय जिस कोष में रखी जाती है उसके विनियमन के लिए भी अधिनियम में प्रावधान किया गया है। ग्राम पंचायत स्तर पर आमदनी चूंकि कम होती है इसलिए सरपंच को आमदनी की अभिरक्षा के लिए उत्तरदायी बनाया गया है किन्तु पंचायत समिति तथा जिला परिषद् के स्तर पर कोष (ट्रेजरी) की व्यवस्था को लागू किया गया है। ग्राम पंचायत के सरपंच के लिए भी नियमों में यह निर्देश दिये गए हैं कि यदि उसके क्षेत्र में कोई बैंक या पोस्ट ऑफिस हो तो ग्राम पंचायत से होने वाली आमदनी को वह उसमें रखेगा।

(3) बजट के सिद्धांतों का विनियमन : केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार की भांति ही पचायती राज संस्थाओं में भी वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से 31 मार्च तक होता है। इस वित्तीय वर्ष में आय-व्यय को विनियमित करना और बजट तथा उसके प्रशासन के लिए आवश्यक प्रावधान अधिनियम के माध्यम से किए हुए हैं। राजस्थान में अधिनियम में बजट सम्बन्धी प्राथमिक सिद्धातों और रीति-नीति का विवरण तथा उल्लेख कर दिया गया है। पचायती राज की तीनों ही स्तर पर कार्यरत संस्थाओं द्वारा उनका बजट तैयार करने के लिए राज्य सरकार ने नियमों में अलग-अलग प्रपत्र निर्धारित कर दिया है और इन संस्थाओं से यह आशा की जाती है कि वे अपना बजट निर्धारित प्रपत्र में तैयार कर उच्चस्तरीय संस्था की स्वीकृति के लिए प्रस्तुत करेंगी। अधिनियम में बजट अनुमान तैयार करना, उन्हें स्वीकृति देने वाली उच्चसत्ता को प्रस्तुत करना, उच्चसत्ता द्वारा उन्हें आवश्यक संशोधनों के साथ वापस लौटाना और इसी सम्बन्ध में समय सीमा का निर्धारण कर दिया गया है। जब से अधिनियम के माध्यम से इन संस्थाओं के बजट को विनियमित करने से सम्बन्धित सिद्धांतों का प्रवर्तन किया गया था तब से इन संस्थाओं द्वारा उनका पालन किया जा रहा है।

(4) लेखा संधारण : पंचायती राज अधिनियम के माध्यम से राज्य सरकारों को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वे इन संस्थाओं के आय-व्यय के लेखों का संधारण

Scanned with CamScanner

अरुचि होते हुए भी इन संस्थाओं के पदाधिकारियों ने उन्हें किसी प्रकार की चुनौती देने का रुझान व्यक्त नही किया है।[8] राज्य सरकार के पंचायत राज विभाग द्वारा इन संस्थाओं के प्रशासनिक कार्य संचालन हेतु विभिन्न परिपत्रों और प्रक्रियाओं का निर्धारण कर दिया जाता है। इन संस्थाओं से राज्य सरकार यह अपेक्षा करती है कि अपने प्रशासनिक कामकाज को संचालित करते समय वे उनका आवश्यक विवरण उन परिपत्रों में रखें। इस प्रकार के परिपत्रों के राज्य सरकार द्वारा प्रसारण का परिणाम यह होता है कि पंचायत राज संस्थाएँ भी नौकरशाही की उसी प्रक्रिया का अनुसरण करने लगती हैं जो प्रक्रिया उच्चतर राजकीय प्रशासनिक संस्थाओं में अपनाई जाती है। इसका एक नकारात्मक परिणाम यह भी हुआ है कि इन संस्थाओं को अपनी जनता की अपेक्षाओं के अनुरूप अपने प्रशासनिक कामकाज को गति प्रदान करने में कोई स्वायत्तता नहीं मिल सकी है और ये संस्थाएँ अनायास ही स्थानीय जनता की सेवा के कार्य में नौकरशाही की जटिल व उलझनपूर्ण प्रक्रिया का शिकार हो गई हैं।

(iii) कर्तव्यों के निर्वाह में विफल रहने पर नियंत्रण :पंचायत राज संस्थाओं से जिन अनिवार्य कार्यों को सम्पन्न कराने की अपेक्षा सम्बन्धित अधिनियम में की जाती है यदि ये संस्थाएँ उन अनिवार्य कार्यों को सम्पन्न नहीं कर सकें तो राज्य सरकार को अधिनियमों में यह शक्ति दी गई है कि वह इन संस्थाओं को ऐसे अनिवार्य कार्यों को सम्पन्न करने के लिए अवधि निश्चित कर सकती है। यदि अवधि निश्चित किए जाने के पश्चात् भी ये संस्थाएँ उस कार्य को नहीं कर पाईं तो राज्य सरकार किसी उचित और सक्षम संस्था को वह कार्य करने का निर्देश दे सकती है और ऐसे कार्य को सम्पन्न करने पर जो व्यय हुआ है वह उन संस्थाओं को दिए जाने वाले अनुदान मे से काटा जा सकता है।

राजस्थान में नए अधिनियम राजस्थान पंचायत अधिनियम, 1994 में भी पंचायत समिति या जिला परिषद् के इस प्रकार के व्यतिक्रम की स्थिति मे कर्तव्यों की पालना कराने हेतु शक्ति राज्य सरकार में निहित की गई है।[9] यह अधिनियम प्रावधान करता है कि यदि कोई पंचायत समिति या जिला परिषद्, अधिनियम द्वारा आरोपित किसी कर्तव्य का पालन करने में असफल रहती है तो राज्य सरकार लिखित आज्ञा द्वारा उस कर्तव्य पालन के लिए एक अवधि नियत कर सकेगी तथा ऐसी आज्ञा तुरन्त सम्बन्धित पंचायत समिति या जिला परिषद् को सूचित की जाएगी।[10] इसी प्रकार यदि इस नियत अवधि के भीतर सम्बन्धित संस्था के द्वारा उक्त कर्तव्य का पालन नहीं किया जाता है तो राज्य सरकार किसी व्यक्ति या सस्था को उसका पालन करने के लिए नियुक्त कर सकेगी और निर्देश दे सकेगी कि ऐसे कर्तव्य के पालन मे हुआ व्यय उसके लिए नियुक्त व्यक्ति को उचित पारिश्रमिक सहित सम्बन्धित पंचायत समिति या जिला परिषद् द्वारा तुरन्त चुकाया जाएगा।[11] यदि इस प्रकार किया गया व्यय और पारिश्रमिक सम्बन्धित संस्था द्वारा नही चुकाया जाए तो राज्य सरकार ऐसे व्यक्ति को, जिसकी अभिरक्षा में उन संस्थाओं की निधि की राशि शेष हो, उक्त व्यय और पारिश्रमिक या उनका ऐसा भाग, जिनका भुगतान उक्त शेष राशि में संभव हो, चुकाने

Scanned with CamScanner

यदि कोई कानूनी मतभेद हो तो उस पर अन्तिम निर्णय करने की शक्ति राज्य सरकार को दी गई है। पंचायत समितियों के प्रस्तावों के संदर्भ में तो निरस्तीकरण की कार्यवाही, उनके नियम विरुद्ध होने पर, राज्य सरकार को प्रदान की गई है जिला परिषद् के प्रस्तावों को निरस्त करने के सम्बन्ध में अब तक राजस्थान में जिलाधीश ने सरकार को सुझाव प्रेषित करने में संयम का ही परिचय दिया है। सरकार द्वारा इस सम्बन्ध में जो रुझान स्पष्ट किया गया है उससे यह प्रतीत होता है कि इन संस्थाओं द्वारा पारित संकल्पों के नियम विरुद्ध होने के परिवादों पर राज्य सरकार सतर्क होकर जांच करती है और बहुत ही आवश्यक होने पर इन प्रस्तावों को निलम्बित कर निरस्त करने की अपनी शक्ति का प्रयोग करती है।

(vii) संस्थाओं को निलम्बित एवं भंग करना : पंचायती राज संस्थाओं को उनके कार्य निष्पादन में शिथिल या असफल रहने के कारण राज्य सरकार पंचायती राज अधिनियम 1994 के अन्तर्गत भंग कर सकती है। इस सम्बन्ध में राजस्थान पंचायती राज अधिनियम निम्नांकित परिस्थितियों में इन संस्थाओं को अधिक्रमण या विघटन किए जाने के लिए राज्य सरकार को अधिकार प्रदान करता है :-

1. अपनी शक्तियों का प्रयोग करने में या अपने कर्तव्यों का पालन करने में असफल रहने पर, या
2. उसने इस अधिनियम या अन्य किसी प्रवर्तित कानून के द्वारा या उसके अधीन की गई शक्तियों में से किसी का अधिक प्रयोग किया है या उनका दुरुपयोग किया है।

उपर्युक्त दोनों परिस्थितियों में पंचायती राज इकाइयों की असफलता, अतिरेक या दुरुपयोग को दूर करने के लिए, या उसे संतोषजनक स्पष्टीकरण देने के लिए राज्य सरकार उस पंचायत समिति या जिला परिषद् को निर्देश देती है और ऐसे निर्देश की पालना न किए जाने पर उस संस्था को अधिकतम छः माह के लिए अधिक्रमित कर सकती है या निश्चित तिथि से उसे विघटित करने का आदेश दे सकती है। इस प्रकार इन संस्थाओं को अधिक्रमित या विघटित करने की, राज्य सरकार की शक्ति एक प्रकार से इन संस्थाओं पर नियंत्रण की अन्तिम शक्ति है जिसका प्रयोग राज्य सरकार कर सकती है।

राज्य सरकार अधिनियम की धारा 10 के अनुसार किसी भी पंचायती राज संस्था की सीमाओं में परिवर्तन भी कर सकती है।

(स) तकनीकी नियंत्रण

पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार का तकनीकी परिवर्तन लाना सरकार का एक प्रमुख उद्देश्य रहता है। भारतवर्ष चूंकि कृषि प्रधान देश है जिसकी कृषि की व्यवस्था पुरानी तकनीक पर आधारित रहती है। इसलिए भारतवर्ष की प्रगति की कोई भी कल्पना तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि उसकी कृषि की आधारभूत तकनीक में उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से कोई

Scanned with CamScanner

ऐसा करते समय वे निर्धारित प्रक्रिया प्रपत्रों और विधियों को ही माध्यम बनाते है किन्तु आकस्मिक निरीक्षण सम्बन्धित पदाधिकारी कभी भी, जब वे ऐसा करना आवश्यक समझें, कर सकते हैं। दोनों निरीक्षणों में अन्तर यह है कि आकस्मिक निरीक्षण करते समय पदाधिकारियों का ध्यान इस तथ्य पर रहता है कि सामान्य काम–काज साधारणतः ठीक तरह से चल रहा है या नहीं किन्तु जब नियमित निरीक्षण किया जाता है तो निरीक्षण किए जाने वाले संस्थाओं के कामकाज की समस्त दृष्टिकोण से व्यापक जांच की जाती है। यह जांच सूक्ष्म तथा नियमों के अनुसार की जाती है तथा छोटी से छोटी बात और तथ्यों को ध्यान से देखा व समझा जाता है। दोनों ही प्रकार के निरीक्षणों का प्रतिवेदन अधिकारियों के द्वारा स्थानीय संस्थाओं को भेजना होता है जिसमें यह अंकित किया जाता है कि उनके निरीक्षण के दौरान उन संस्थाओं के कामकाज के विषय में अधिकारियों ने क्या महसूस किया है और क्या कमियां पाई गई है?

यद्यपि, नियंत्रण करने वाले पदाधिकारियों के विषय में सामान्य तौर पर यह अनुभव किया गया है कि वे, उनके लिए निर्धारित संख्या में न्यूनतम निरीक्षणों को भी प्रायः नहीं कर पाते हैं। अब राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1994 की धारा 100 के अन्तर्गत, राज्य सरकार या उसके द्वारा प्राधिकृत अधिकारियों को विभिन्न स्तरों की पंचायत राज संस्थाओं के निरीक्षण का अधिकार दिया गया है। पंचायती राज के अपनाए जाने के आरम्भिक वर्षों में राजस्थान में जिला विकास अधिकारी और उप जिला विकास अधिकारियों ने अपने निरीक्षण और जांच के इस अधिकार का बहुत उत्साहपूर्वक निर्वाह करते हुए इन संस्थाओं के पदाधिकारियों में भी कार्यकुशलता और उत्साह संचरित किया था।[7] किन्तु निरीक्षण के संदर्भ में यह उत्साह आगामी वर्षों में बना नही रह सका है। यदि पचायती राज संस्थाओं के कामकाज को नागरिकों के हित में गतिशील बनाए रखना अभीष्ट है तो राज्य सरकार को इस ओर पर्याप्त ध्यान देना होगा कि अधिकारियों द्वारा अधीनस्थ संस्थाओं पर निरीक्षण और जांच को कैसे अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। चिन्तकों की यह मान्यता है कि प्रभावी निरीक्षण, विशेष तौर पर आकस्मिक निरीक्षण, के माध्यम से प्रशासनिक सस्थाओं की कार्यकुशलता में निर्णायक सुधार लाया जा सकता है।

(ii) सामान्य निर्देशों का प्रसारण : विधान मंडल द्वारा पारित पंचायत राज से अधिनियम राज्य सरकार को इस बात के लिए अधिकृत करता है कि वह को उनके कामकाज की दशाओं में सुधार तथा उनके हेतु समय–समय पर दिशा–निर्देश जारी राज्य सरकार के समस्त वे होते है,

Scanned with CamScanner

संस्थाओं पर राज्य का कितना नियंत्रण होना चाहिए अथवा उन पर नियंत्रण होना ही नही चाहिए। इन मुद्दों पर विद्वानों में मतैक्य नहीं मिलता है। इस सम्बन्ध में जो विचार पाए जाते हैं उनमें एक विचाराधारा लोकतांत्रिक चिन्तकों की है तो दूसरी प्रशासनिक दृष्टि से सोचने वालों की और तीसरी विचारधारा इन दोनों का संयुक्त मिश्रण कही जा सकती है अर्थात् इस सम्बन्ध में निम्नांकित तीन विचारधाराएं प्रचलित हैं:

1. स्थानीय संस्थाओं के प्रति अभिमुखी विचारधारा,
2. सेवा या प्रशासनिक दक्षता के प्रति अभिमुखी विचारधारा, तथा
3. संतुलित विचारधारा।

1. स्थानीय संस्थाओं के प्रति अभिमुखी विचारधारा : नियंत्रण से सम्बन्धित इस प्रथम विचारधारा के प्रणेता जनतंत्रीय भावनाओं के समर्थक हैं। इनके विचार में नगरीय संस्थाओं में भी अनियंत्रित जनतंत्रीय परम्पराओं का विकास किया जाना चाहिए और इनमें राज्य का हस्तक्षेप अवांछनीय माना जाए। उनका मानना है कि इन संस्थाओं में राज्य का हस्तक्षेप लोकतंत्र को सीमित करता है। इस विचाराधारा के समर्थक विद्वत् जनों द्वारा निम्नांकित तर्क दिए जाते हैं :

(अ) स्थानीय संस्थाओं की इकाइयां अधिनियम द्वारा सृजित, आवश्यक संसाधनों और क्षमता से युक्त स्वायत्त शासन की ऐसी संस्थाएं हैं जिन्हें अपने कार्यों और दायित्वों का स्वयं निष्पादन करने की पूरी छूट मिलनी चाहिए,

(ब) ये इकाइयां सरकार की नीति को क्रियान्वित करते समय और सरकारी अनुदान द्वारा प्राप्त राशि को व्यय करते समय केवल सरकारी विभागों की तरह काम नहीं करतीं,

(स) सरकार का नियंत्रण केवल उन महत्वपूर्ण बिन्दुओं तक सीमित रहना चाहिए जिनमें सरकारी नीति और वित्तीय प्रबन्ध के दायित्व निष्पादित किए जाने का मामला अन्तर्निहित हो।

2. सेवा या प्रशासनिक दक्षता के प्रति अभिमुखी विचारधारा : इन संस्थाओं की प्रशासनिक दक्षता के प्रति अभिमुखी विचारधारा इस बात पर बल देती है कि स्थानीय संस्थाएं, उनकी सेवाओं को उनके कार्य के प्रति सचेष्ट बनाए रखने के लिए निरन्तर पर्यवेक्षित, निर्देशित, नियंत्रित और कभी-कभी प्रताड़ित की जाती रहनी चाहिए। इस सम्बन्ध में स्थानीय स्वशासन मंत्री सम्मेलन ने यह संस्तुति की थी कि इस सम्मेलन की राय है कि प्रशासन की अपने शाखाओं की भांति स्थानीय शासन के मामलों में भी जनता को अपनी इच्छाओं को कार्यान्वित करने का पूरा-पूरा अवसर दिया जाए किन्तु सरकार के हाथ में नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण की समुचित शक्तियां होनी चाहिए जिससे वह कुशल प्रशासन को सुनिश्चित कर सके, कुप्रशासन को रोक सके और आवश्यक सेवाओं की व्यवस्था को छिन्न-भिन्न होने से बचा सके। इसी तरह करारोपण जांच आयोग ने भी इन संस्थाओं पर नियंत्रण के औचित्य को स्वीकार किया था और यह माना था कि सरकार का नियंत्रण केवल निषेधात्मक नहीं है अपितु

Scanned with CamScanner

चार्ट - 16.1

पंचायती राज संस्थाओं पर राज्य का नियन्त्रण

पंचायती राज

संशोधन करने का अधिकार

राज्य सरकार द्वारा

वह आमतौर पर इन संस्थाओं

1. इन संस्थाओं
2. शक्ति, संरचन
3. कार्यों की प्र
4. पंचायती राज
5. अन्तर–संस्थ
6. पंचायती रा नियंत्रण।

(i) पंचायती राज संस्थाओं

पंचायती राज संस्थ

स्वतः विकसित नहीं होतीं

कोई अधिनियम उत्तरदायी

सम्बन्धी क्षेत्राधिकार का निर्

संस्थाओं की सीमा में कोई

अपनी ओर से कर सकती

जाती है। राजस्थान पंचाय

लिए अधिकृत करता है कि

चाहे इनकी भौगोलिक सी

सकती है।

(ii) शक्ति, संरचना व चु

इसी प्रकार पंचाय

इकाइयों की शक्तियों, संग

के माध्यम से किया जाता

अधिनियम यह प्रावधान क

जाएँगे, सदस्यों के चुनाव

होगा, इत्यादि सभी बिन्दु

(iii) कार्यों की प्रकृति क

जहां तक पंचायत

सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध में

के द्वारा निष्पादित किए

माध्यम से राज्य सरकार

अधिनियम द्वारा संविधान

Scanned with CamScanner

नियंत्रण को सार्थक बनाते रहते है।

नगरीय स्वायत्त शासन संस्थाए एक निर्दिष्ट क्षेत्र मे कुछ प्रशासकीय कार्य करती है। यद्यपि इन संस्थाओं को अपने क्षेत्र एवं अपनी कार्य सीमा मे कार्य करने की स्वतंत्रता होती है, पर वास्तव में इन संस्थाओं को राज्य सरकार से प्रत्यायोजित शक्तियां ही प्राप्त होती हैं। अतः राज्य सरकार तथा विधान सभा का यह दायित्व होता है कि वह देखें कि इन संस्थाओं द्वारा प्रशासन के निर्धारित नियमों का पालन हो रहा है या नहीं।[10]

राज्यों की विधानसभाएं जो कानून इन संस्थाओं के लिए बनाती है, उनके अन्तर्गत राज्य सरकार उप–नियम तथा अन्य आदेश भी जारी कर सकती है। उदाहरणार्थ राजस्थान सरकार द्वारा बनाए गए नियम राजस्थान राजपत्र में प्रकाशित किए जाते है तथा प्रकाशित किए जाने की तिथि के एक महीने के पश्चात् उन्हें कानून के समान मान्यता प्राप्त हो जाती है।

राज्य सरकारों द्वारा स्थानीय निकायों को आदेश देने के संदर्भ : साधारणतः राज्य सरकारों को निम्नलिखित विषयों में नियम बनाने तथा आदेश देने के अधिकार प्राप्त होते हैं :[11]

नगरपालिकाओं के सदस्यों के निर्वाचन सम्बन्धी नियम, बैठकों की कार्यविधि सम्बन्धी नियम, राज्य सरकार के अधिकारियों द्वारा नगरपालिकाओं को परामर्श आदि देने, नगरपालिकाओं के आय–व्यय के हिसाब, विकास की योजनाएं तथा अनुमान, पालिकाओं द्वारा संपत्ति की खरीद बिक्री, करारोपण, वित्त तथा अनुदान, भविष्य निधि, इन संस्थाओं द्वारा उपनियम बनाने सम्बन्धी शक्ति पर नियंत्रण के सम्बन्ध में अधिकारियों, कर्मचारियों की सेवा सम्बन्धी तथा नगरपालिकाओं के वर्गीकरण आदि से सम्बन्धित नियम।

राज्य सरकारें ही प्रायः इन विधायी शक्तियों का उपयोग करती हैं और अपने इन्हीं अधिकारों के अधीन ये आवश्यकतानुसार नई पालिका या निगम बना सकती हैं, उनकी सीमाओं में परिवर्तन कर सकती हैं, उन्हें भंग कर सकती हैं, वार्डों की संख्या व सीमा निर्धारण कर सकती हैं, पालिका के सदस्यों की संख्या निर्धारित करना तथा उनके निर्वाचन को नियंत्रित करना भी राज्य सरकार का ही वैधानिक दायित्व है।

प्रो. हार्ट के ये शब्द इन संस्थाओं पर विधायी व न्यायिक नियंत्रण के सम्बन्ध में उल्लेखनीय है "नियंत्रण की दो विधियां–विधायी एवं न्यायिक – अब पुरानी पड़ गई हैं।"[12]

यहाँ प्रो. अवस्थी ने भी इस सम्बन्ध में यही लिखा है कि "विधायी और न्यायिक नियंत्रण यदाकदा ही उपयोग में लिए जाते हैं। पहला (विधायी) तो तब जब कि किसी स्थानीय संस्था का सृजन कर उसे अधिकार दिए जाते हैं और दूसरा (न्यायिक) नियंत्रण तब कार्यशील होता है जब ये संस्थाएं कोई अवैधानिक कार्य करती हैं। इन संस्थाओं पर हर कदम पर जो नियंत्रण प्रभावी हुआ है वह है प्रशासकीय नियंत्रण।"[13]

Scanned with CamScanner

विवरण, वार्षिक प्रतिवेदन एवं अन्य महत्त्वपूर्ण जानकारियों के विवरण आदि प्राप्त करने के माध्यम से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष महत्वपूर्ण प्रशासनिक नियंत्रण रखती है।

राज्य सरकार अपने अधिकारियों के द्वारा स्थानीय संस्थाओं की नगरीय गतिविधियों, सम्पत्ति और निर्माण कार्यों का निरीक्षण करने में सक्षम है। साधारणतः जिलाधीश को निरीक्षण के व्यापक अधिकार मिले होते हैं।

नगरपालिका के कार्मिक वर्ग के सम्बन्ध में भी राज्य सरकार नियंत्रण के अधिकार रखती है। पालिका अथवा निगम में उच्च पदाधिकारियों सचिव, कमिश्नर या अधिशासी अधिकारियों की नियुक्ति और सेवा शर्तें राज्य सरकार ही तय करती है। कर्मचारियों की संख्या, उनके वेतनमान, सेवा की शर्तें, भविष्य निधि आदि पर भी राज्य सरकार का नियंत्रण रहता है।

उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त भी नगरीय स्थानीय निकायों पर नियंत्रण के सम्बन्ध में राज्य सरकार को निम्नांकित अधिकार प्राप्त हैं :

1. किसी नगरपालिका द्वारा अधिकृत अचल सम्पत्ति में प्रवेश करना तथा उसका निरीक्षण करना,
2. किसी पालिका के क्षेत्र में उसके नियंत्रण में चल रहे कार्य का निरीक्षण करना,
3. पालिका अथवा उसकी समिति की कार्यवाही के किसी दस्तावेज को मांगना तथा उसका निरीक्षण करना,
4. किसी नक्शे, विवरण, हिसाब अथवा रिपोर्ट का अवलोकन करना,
5. किसी निकाय के किसी काम के विरुद्ध आपत्ति हो तो उस निकाय को उस आपत्ति पर विचार करने का आदेश देना,
6. जनहित के प्रतिकूल कार्य को स्थगित करना,
7. आम जनता के स्वास्थ्य और सुरक्षा के हित में किसी कार्य को करने का आदेश देना,
8. नगर प्रशासन के किसी मामले की जांच करवाना,
9. संस्था द्वारा कर्तव्य पालना में अवहेलना की जांच कर उसे पूरा करने की अवधि निश्चित करना,
10. पालिका के किसी निर्णय को निरस्त करना,
11. पालिका के निर्वाचित सदस्यों को हटाना,
12. किसी नगर निकाय को भंग कर नए चुनाव करवाना अथवा किसी पालिका को अधिकार देना,
13. किसी भी आपात स्थिति के संदर्भ में यदि जिलाधीश यह अनुभव करते हैं कि यह कार्य तुरन्त निष्पादित किया जाना आम जनता के स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के लिए अनिवार्य है तो ऐसे कार्य को स्थानीय निकाय के व्यय पर निष्पादित करने का आदेश जिलाधीश दे सकेंगे।

Scanned with CamScanner

4. वित्तीय नियंत्रण : स्थानीय निकायों पर राज्य सरकार का वित्तीय नियंत्रण इतना विस्तृत है कि इन निकायों की कार्यक्षमता काफी हद तक इस नियंत्रण की प्रकृति (कठोर या सरल) पर निर्भर करती है। सभी नगरीय संस्थाएँ, राज्य सरकार द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार ही अपने करों का निर्धारण करती हैं। पालिकाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपना वार्षिक बजट सरकार के समक्ष विचारार्थ रखेंगी, राज्य सरकार उसमें आवश्यक परिवर्तन और काट–छांट कर सकती है। सभी राज्यों में राज्य सरकारें नगरपालिका द्वारा ऋण लेने की शर्त पर नियंत्रण रखती हैं। सरकारें यह भी देखती हैं कि ऋणग्रस्त पालिकाएँ समय पर मूल एवं सूद की किश्तें अदा करती रहें। पालिकाओं को अपनी उन योजनाओं, जिनमें दस हजार रुपयों से अधिक व्यय की संभावना हो, को राज्य सरकार की पूर्वानुमति हेतु प्रस्तुत करना होता है।

इन संस्थाओं को अनुदान राशि स्वीकृत करते समय राज्य सरकारें कई शर्तें लागू कर देती हैं जो अन्ततः राज्य के नियंत्रण का ही माध्यम प्रमाणित होती हैं। इन संस्थाओं के लेखा परीक्षण के लिए राज्य सरकारें स्थानीय निधि लेखा परीक्षकों की नियुक्ति करती है। इन संस्थाओं पर राज्य के नियंत्रण का यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपागम है।

यदि राज्य सरकार स्थानीय निकाय द्वारा पारित किसी कर या करों को जन–कल्याण की दृष्टि से आपत्तिजनक अथवा हानिकारक समझे तो वह उस कर या करों की उगाही को स्थगित कर सकती है या वह किसी निकाय को किसी कर को लगाने का आदेश भी दे सकती है।

यहां यह उल्लेखनीय है कि सभी नगरीय निकायों पर राज्य के नियंत्रण की प्रकृति एक सी नहीं होती। कस्बा क्षेत्र समितियों पर नगरपालिकाओं की अपेक्षा कहीं अधिक कठोर नियंत्रण रखा जाता है जबकि नगर निगमों के मामले में यह नियंत्रण प्रायः अलग अधिनियम निर्धारित करते हैं। कोलकाता, मुम्बई तथा चेन्नई के निगमों को राज्य सरकार पालिकाओं की भांति अधिकारच्युत या भंग नहीं कर सकती पर ऐसा प्रतिबंध अन्य निगमों के सम्बन्ध में नहीं है। छावनी मंडल पर राज्य सरकार का कोई नियंत्रण नहीं रहता क्योंकि ये 1924 के केन्द्रीय केन्टोनमेन्ट बोर्ड अधिनियम से प्रशासित होते हैं। इसका प्रशासनिक नियंत्रण केन्द्रीय सरकार के रक्षा मंत्रालय द्वारा होता है।

नियंत्रणकारी संस्था

स्थानीय संस्थाओं पर राजकीय नियंत्रण के उपर्युक्त विवरण में अंकित चारों विधियों में प्रायः यह स्पष्ट हो चुका है कि राज्य सरकार जब इन विधियों में से नियंत्रण हेतु किसी एक विधि को अपनाती है तो उससे सम्बन्धित शीर्षस्थ निकाय उस नियंत्रण विधि को अपनाने के लिए अधिकृत होते हैं। विधायी नियंत्रण के सम्बन्ध में भारतवर्ष में राज्यों की विधानसभाएँ और न्यायिक नियंत्रण के संदर्भ में अधीनस्थ न्यायपालिका से लेकर हमारी एकीकृत न्यायपालिका के सर्वोच्च शिखर पर उच्चतम न्यायालय भी

Scanned with CamScanner

स्थिति में इन संस्थाओं को अनुदान प्रदान करने वाले उच्चतर निकाय से आवश्यक रूप से नियंत्रित होना पड़ेगा। कुल मिलाकर इन संस्थाओं के स्वतंत्र प्रशासनिक अभिकरणों के रूप में विकसित होने, राजनीतिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण का सशक्त माध्यम बनने, जनता में राजनीतिक चेतना सृजित करने के उत्तम अभिकरण सिद्ध होने और राज्य सरकार द्वारा निर्धारित नीतियों तथा कार्यक्रमों को प्रभावी तरीके से कार्यान्वित करने के सटीक प्रशासनिक यंत्र के रूप में विकसित होने के लिए, इन संस्थाओं पर, ऐसी उच्चतर संस्था का नियंत्रण आवश्यक है जो स्वयं भी लोकतांत्रिक तरीके से निर्वाचित हो।

पंचायती राज संस्थाओं पर राजकीय नियंत्रण के औचित्य को यदि राजस्थान राज्य के संदर्भ में देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि राजस्थान चूंकि एक ऐसा राज्य है जिसने अपनी पंचायती राज की इकाइयों को बहुत सी सहायता और शक्तियां हस्तान्तरित कर दी हैं, इसलिए राज्य सरकार पर यह दायित्व आ जाता है कि वह उनके कार्यों पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण करेगी। नियंत्रण की आवश्यकता, दो चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों के कारण और भी अधिक प्रखर हो जाती है। **प्रथम** तो यह कि लोकतंत्र की इन प्राथमिक इकाइयों को लोकतांत्रिक दृष्टि से जो शक्तियां प्रदान कर दी गई हैं उनको निभाने का दायित्व ऐसे प्रतिनिधियों को मिला है जो न केवल नए हैं अपितु स्थानीय हित समूहों के एक ऐसे परिवेश में काम करते हैं जहां उनके निर्णय लेने की शक्ति अनेक सीमाओं से प्रतिबंधित हुई रहती है। **द्वितीयतः** इसलिए कि इन संस्थाओं को अनेक कार्यों का प्रत्यायोजन किया गया है। राज्य के विभिन्न विकास विभागों द्वारा विकास के अनेक कार्यक्रम सीधे पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से कार्यान्वित कराए जाने लगे हैं। समग्रतः यह कहा जा सकता है कि नूतन रूप से विकसित ग्रामीण क्षेत्र के नेतृत्व में, विकास के जिन कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने का दायित्व दिया जाता है उन पर सरकार का उचित पर्यवेक्षण और नियंत्रण इसलिए आवश्यक है कि न केवल कठिनाई की घड़ी में उनका मार्गदर्शन किया जा सके अपितु उनके स्तर पर उत्पन्न होने वाली किसी प्रकार की स्वेच्छाचारिता को भी लोकतांत्रिक तरीके से मर्यादित रखा जा सके।

भारत में, ग्रामीण स्थानीय संस्थाएँ, जो आमतौर पर **पंचायती राज संस्थाओं** के नाम से जानी जाती हैं, राज्य सरकारों के द्वारा नियंत्रित की जाती हैं। राज्यों में इन संस्थाओं पर पर्यवेक्षण और नियंत्रण की व्यवस्था में एकरूपता का अभाव पाया जाता है। किन्तु ऐसा होते हुए भी, सम्पूर्ण देश में इन संस्थाओं पर राजकीय नियंत्रण के कुछ सामान्य लक्षण निम्नांकित चार तत्त्वों के रूप में बताये जाते हैं :

1. नियंत्रण का आधार : देश के समस्त राज्यों में पंचायती राज संस्थाओं पर नियन्त्रण का आधार वह अधिनियम होता है जिसके माध्यम से इन संस्थाओं की रचना की जाती है। उदाहरणार्थ प्रारम्भ में राजस्थान ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की पंचायती राज संस्थाओं का सृजन राजस्थान पंचायत अधिनियम, 1953 तथा राजस्थान पंचायत समिति एवं जिला परिषद् अधिनियम, 1959 के माध्यम से किया गया था। अतः यही

Scanned with CamScanner

अधिनियम इन संस्थाओं पर नियंत्रण का आधार प्रस्तुत करता था। किन्तु अब यह आधार 1994 के राजस्थान पंचायत राज अधिनियम द्वारा निर्धारित होता है। अधिनियम के अन्तर्गत राज्य को नियंत्रण की उन्हीं शक्तियों के अनुरूप कार्य करना होता है जो अधिनियम द्वारा उन्हें प्रदान की जाती हैं। इसके अतिरिक्त अधिनियम के अन्तर्गत जो नियम राज्य सरकार द्वारा बनाए जाते हैं वे भी राज्य सरकार को इन संस्थाओं पर नियंत्रण का आधार प्रस्तुत करते हैं।

2. नियंत्रण की प्रकृति और दायित्व : सम्बन्धित अधिनियमों के अनुसार इन संस्थाओं पर नियंत्रण का यह दायित्व सरकार के विभिन्न कार्यकारी विभागों पर होता है। पंचायती राज संस्थाओं का कार्य और कार्यक्षेत्र इतना सीमित होता है कि इन संस्थाओं के अन्तर्गत आंतरिक नियंत्रण की कोई व्यवस्था प्रायः विकसित नहीं हो पाई है। यही कारण है कि इन संस्थाओं के बाहर की संस्थाएँ ही इन पर नियंत्रण के लिए सम्बन्धित अधिनियम और नियमों के अनुसार अधिकृत की जाती हैं या राज्य सरकार का पंचायती राज विभाग, पंचायती राज के निदेशक और जिलाधीश इन संस्थाओं पर नियंत्रण की प्रकृति को निश्चित करते हैं। इसके अतिरिक्त पंचायत राज संस्थाओं को जिन विकास कार्यों के साथ संबद्ध किया जाता है, ऐसी विकास परियोजनाओं को प्रसारित करने वाले सरकारी विभाग भी उन पर कार्यक्रमों के पर्यवेक्षण की सीमा तक नियंत्रण करते हैं। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि सबसे निम्न स्तरीय इकाई ग्राम पंचायत पर पंचायत समिति और पंचायत समिति पर जिला परिषद् पर्यवेक्षण का दायित्व निभाती है। यहां यह व्यक्त करना भी आवश्यक है कि इन संस्थाओं पर उपर्युक्त बाह्य प्रशासनिक संस्थाओं और अधिकारियों के द्वारा जो नियंत्रण किया जाता है उसकी प्रकृति भी सभी राज्यों में उनके अधिनियमों द्वारा विनिश्चित मानदण्डों के अनुसार प्रायः भिन्न–भिन्न होती है।

नियंत्रण के दायित्वों के संदर्भ में व्यवस्थापिका और न्यायपालिका की भूमिका भी प्रासंगिक बनती है। यद्यपि पंचायती राज संस्थाओं पर इन दोनों निकायों का नियंत्रण सीमित प्रकृति का होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि विधान मंडल पंचायती राज संस्थाओं से सम्बन्धित विधान पारित कर उन्हें वैधानिक आधार प्रदान करते हैं वहीं न्यायपालिका भी उस अधिनियम के प्रावधानों सहित देश में प्रवर्तित आवश्यक वैधानिक प्रावधानों की एक वांछनीय सीमा तक पालना सुनिश्चित करती है। व्यवस्थापिका तो इन संस्थाओं पर अपने नियंत्रणों को तब और अधिक प्रभावी बना सकती है जब पंचायती राज विभाग के कार्यकलापों पर बजट प्रस्तावों के दौरान और प्रश्नकाल इत्यादि के माध्यम से बहस का अवसर उसे प्राप्त होता है। जहां तक पंचायत राज संस्थाओं का सम्बन्ध है उनके वार्षिक प्रतिवेदन इत्यादि यदि विधायिका के समक्ष रखे भी जाते हैं तो वह मात्र एक औपचारिकता होती है। इस प्रकार, पंचायती राज संस्थाओं पर इन दोनों संस्थाओं का नियंत्रण सम्बन्धी दायित्व एक सीमित मात्रा में ही सफल हुआ है।

Scanned with CamScanner

किया जा रहा है। राज्य और केन्द्रीय सरकार की अपेक्षा तो इन संस्थाओं से यह रही है कि उनके द्वारा निष्पादित सेवाओं में न केवल एकरूपता बनी रहे अपितु राज्य सरकार निरन्तर उनकी सेवाओं में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न करती रही है। राज्य सरकार द्वारा इन संस्थाओं को उनकी सेवाओं के कुशल संचालन के लिए जो आर्थिक अनुदान दिए जाते हैं उसके व्यय के औचित्य पर राज्य सरकार का नियंत्रण बना रहे इस हेतु राज्य सरकार विभिन्न प्रशासनिक उपायों के माध्यम से इन संस्थाओं की गतिविधियों को नियंत्रित करती है। राज्य सरकार द्वारा इन संस्थाओं पर किए जाने वाले प्रशासनिक नियंत्रण को आगामी पंक्तियों में, उसके प्रारम्भ से अन्त तक की कार्यविधियों सहित व्यक्त किया जा रहा है।

भारतवर्ष में प्रायः सभी नगरपालिका कानूनों में यह व्यवस्था होती है कि राज्य सरकार किसी भी स्थानीय क्षेत्र को नगरपालिका का स्तर प्रदान कर सकती है, नई पालिका और नियमों का निर्माण कर सकती है, उनकी सीमाओं में परिवर्तन–परिसीमन, परिवर्द्धन कर सकती है और किसी भी ऐसे निकाय को भंग कर सकती है। राज्य सरकार ही ऐसे निकायों की अधिकार सीमाओं का निर्धारण करती है। निगम, पालिका अथवा ऐसे ही नगरीय क्षेत्र को वार्डों में विभक्त करती है, चुनावों की तिथियां घोषित करती है, पार्षदों की कुल संख्या, पदाधिकारियों की संख्याओं का अन्तिम निर्णय करती है। सरकार को यह भी अधिकार होता है कि राज्य सरकार द्वारा निर्धारित नियमों, कानूनों, उपकानूनों और निर्दिष्ट आज्ञाओं की पालना न कर पाने या अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करने के कारण किसी भी निकाय के अध्यक्ष, सदस्य या पदाधिकारी को हटा या निलम्बित कर सकती है। यदि कोई निकाय अपनी व्यवस्था ठीक ढंग से नागरिक सेवाओं को सुचारु रख पाने में सफल नहीं रह पाता है तो राज्य सरकार उसे भंग कर नये निर्वाचन की घोषणा कर सकती है या प्रशासक नियुक्त कर सकती है। हर पार्षद नगरपालिका की सम्पत्ति की उस हानि, अपव्यय अथवा अनुचित प्रयोग के लिए स्वयं उत्तरदायी माना जाता है जिसमें उसका हाथ होता है और ऐसी स्थिति में राज्य सरकार पार्षद को कर्तव्य अवहेलना के कारण हटा सकती है।

किसी भी निकाय द्वारा पारित प्रस्ताव या उपविधि को निरस्त या स्थगित करने का अधिकार भी राज्य सरकार प्रयोग में लाती है अर्थात् स्थानीय निकाय कोई भी नियम या उपविधि तभी बना सकती है जब उसे सरकार की स्वीकृति प्राप्त हो जाए। राज्य सरकार का यह अन्तिम अधिकार है कि ऐसे किसी प्रस्ताव, आदेश या कानून को स्वीकृति दे या न दे। प्रशासनिक नियंत्रण की यह भी एक महत्वपूर्ण दिशा है कि नगरीय कानून के अन्तर्गत इन निकायों को अपनी सभी भावी योजनाएँ व प्रस्ताव राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति के लिए भी पेश करने होते हैं तभी उन्हें विचारार्थ लिया जाता है और पारित करने के उपरांत भी राज्य सरकार की स्वीकृति लेनी होती है।

राज्य सरकार विभिन्न स्थानीय निकायों के आपसी विवादों का निपटारा भी करती है जो सभी पक्षों के लिए निर्णायक और बाध्यकारी होता है। राज्य सरकारें इन संस्थाओं से विभिन्न प्रकार के प्रतिवेदन, करों का वितरण, कार्मिक वर्ग का वार्षिक

Scanned with CamScanner

अपनी ओर से कोई पहल नही करती और प्रभावित व्यक्ति द्वारा वाद प्रस्तुत किए जाने पर ही ऐसा आदेश देती है। न्यायालय इस वाद के लिए सक्षम है कि इन संस्थाओं पर राज्य सरकार द्वारा पारित आदेशों की वैधानिकता की वह जांच करे। राज्य सरकार नगरपालिकाओं को भंग करने में सक्षम है किन्तु किसी नगरपालिका को अधिक्रमित किए जाने का आदेश कितना न्यायसंगत है इस बात की जांच न्यायपालिका कर सकती है बशर्ते कि राज्य सरकार के ऐसे किसी आदेश को सम्बन्धित न्यायपालिका में चुनौती दी गई हो।

न्यायपालिका द्वारा जो हस्तक्षेप नगरीय संस्थाओं के काम काज में किया जाता है वह भिन्न–भिन्न प्रकृति का हो सकता है। हस्तक्षेप की यह प्रकृति प्रस्तुत वाद की विषयवस्तु पर निर्भर करती है। कोई भी व्यक्ति नगरीय संस्थाओं द्वारा किए गए कार्य में विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को अपनाए जाने के कारण न्यायिक हस्तक्षेप की प्रार्थना कर सकता है, या नगरीय संस्था द्वारा दिए गए आदेश की वैधानिकता को चुनौती दे सकता है अथवा उसके द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले अनिवार्य कार्य को न कर पाने की स्थिति में उसे किए जाने के लिए परमादेश की प्रार्थना कर सकता है। कोई नागरिक इस बात के लिए भी वाद प्रस्तुत कर सकता है कि नगरीय संस्थाओं के प्राधिकारी प्रवर्तित कानूनों की मन–मर्जी से एक पक्षीय व्याख्या कर रहे हैं। अतः ऐसी स्थिति में कानून की सही व्याख्या के लिए भी वाद प्रस्तुत हो सकता है। इस प्रकार न्यायपालिका द्वारा नगरीय संस्थाओं के काम–काज में हस्तक्षेप, उन पर नियंत्रण की प्रकृति प्रभावित व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले वाद की विषय वस्तु द्वारा निर्धारित होती है।

न्यायपालिका का यह नियंत्रण भी विधायी नियंत्रण की भांति ही कुछ कम प्रभावी बन पड़ा है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि नगरीय संस्थाओं द्वारा किए गए गलत काम को यदि चुनौती दी जाए तो न्यायपालिका अपने दायित्वों को भली प्रकार निभाती रही है और अन्याय के प्रतिकार का एक सक्षम उपकरण भी सिद्ध हुई है। किन्तु न्यायिक नियंत्रण की यह तकनीक अपने विलम्बकारी व्यवहार एवं खर्चीली तथा जटिल होने के कारण अनेक सीमाओं से ग्रस्त प्रतीत होती है। भारत जैसे विकासशील देश में न्यायपालिका का हस्तक्षेप आमंत्रित करने के लिए लोगों में उत्सकुता की इसलिए कमी दिखाई देती है क्योंकि एक बार मामला न्यायपालिका में आ जाने के पश्चात् वर्षों तक उसके सुलझने की आशा प्रायः समाप्त हो जाती है। एक के बाद एक, दूसरे न्यायालय में अपील का जो क्रम चलता है तो कई दशक बीत जाते हैं और प्रभावित व्यक्ति न्याय की आशा में कभी–कभी दम भी तोड़ देते हैं। इस कारण न्यायपालिका का यह नियंत्रण नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण की प्रभावी और सशक्त विधि नहीं बन सका है।

3. प्रशासनिक नियंत्रण : नगरीय संस्थाओं पर नियंत्रण के सन्दर्भ में उक्त विवरण में विधायी और न्यायिक नियंत्रण से सम्बन्धित जिन विधियों का विश्लेषण किया गया है वे इन संस्थाओं पर नियंत्रण की प्राथमिक विधियां हैं। समीक्षकों की ऐसी

Scanned with CamScanner

उपर्युक्त वर्णित विभिन्न विद्वानों एवं विचारकों के विचारों से यह मत स्पष्ट होता है कि स्थानीय निकायों पर राज्य द्वारा किए जा रहे विधायी नियंत्रण का प्रभाव उतना नहीं रह गया है जितना वह औपचारिक रूप से होना चाहिए था। इस स्थिति के स्पष्टतः दो कारण प्रतीत होते हैं। **प्रथम** तो यह कि आधुनिक लोकतंत्रीय युग में विशेष तौर पर, संसदीय प्रणाली वाले देशों में सरकार का निर्माण और संचालन व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका में, एक ही राजनीतिक दल के बहुमत पर अवलम्बित हो गया है। इस स्थिति का परिणाम यह हुआ है कि व्यवस्थापिका के उस राजनीतिक दल, जिसका कि व्यवस्थापिका में बहुमत है, के प्रभावी किस्म के विधायक कार्यपालिका में स्थान पा जाते हैं और व्यवस्थापिका एक प्रकार से एक प्रभावशून्य सदन बनकर रह जाती है। इस स्थिति को कुछ विचारकों ने इस प्रकार भी व्यक्त किया है कि इस तरह विनिर्मित व्यवस्थापिका एक प्रकार से परमुखापेक्षी सदन रह जाता है। अतः व्यवस्थापिका की सभी संसदीय लोकतंत्रों में यह स्वाभाविक नियति बन गई है कि वह कार्यपालिका निकाय को नियंत्रित नहीं कर पाती, अपितु कार्यपालिका प्रायः विभिन्न तरीके से उसे ही नियंत्रित करती है। इसलिए व्यवस्थापिका व्यवहार में नगरीय संस्थाओं पर भी कोई प्रभावी नियंत्रण कर पाने में सफल नहीं हो पा रही है।

व्यवस्थापिका के नियंत्रण की शिथिलता का **दूसरा** सबसे बड़ा कारण यह प्रतीत होता है कि व्यवस्थापिका में चुनकर जाने वाले सदस्य अपने दायित्वों का वैसा निर्वाह नहीं करते जैसा उनसे अपेक्षित है। सदस्यों की विधायी कार्यों एवं अध्ययन तथा स्वाध्याय के प्रति घटती रुचि ने उन्हें कार्यपालिका निकाय और उसके द्वारा नियंत्रित प्रशासनिक विभागों के कार्य कलाप पर नियंत्रण में शिथिलता ला दी है। होना तो यह चाहिए कि समस्त विधायकों को अपने निर्वाचकों की सामान्य भावनाओं और समाचारपत्रों में व्यक्त पीड़ा को विधायिका में अपने मुखर व्यवहार द्वारा व्यक्त करना चाहिए। किन्तु ऐसा हो नहीं रहा है और इसका एक मात्र कारण यह है कि विधायक राजनीतिक कार्य–कलापों में अधिक व्यस्त रहने लगे हैं तथा अपने विधायी दायित्वों के प्रति उतने सचेष्ट और समर्पित नहीं रहते हैं। इन दोनों ही स्थितियों का परिणाम यह हुआ है कि नगरीय संस्थाओं पर विधायी नियंत्रण प्रभावी नहीं रह गया है। **सम्भवतः विधायी नियंत्रण की यही गंभीर सीमा कही जा सकती है।**

2. न्यायिक नियंत्रण : नगरीय स्थानीय संस्थाओं पर नियंत्रण का यह दूसरा प्रकार इसलिए महत्वपूर्ण है कि यदि स्थानीय संस्थाओं द्वारा किसी व्यक्ति के साथ कोई अनियमित और अन्यायपूर्ण व्यवहार हो जाए तो न्यायपालिका उसे उचित संरक्षण प्रदान कर सकती है। यद्यपि न्यायपालिका यह संरक्षण तभी प्रदान कर पाती है जब कोई प्रभावित व्यक्ति अपने साथ घटित अन्याय के विरुद्ध न्यायालय में वाद प्रस्तुत करता है। वस्तुतः न्यायपालिका यह देख सकती है कि नगरीय निकाय द्वारा सम्पन्न कार्य निर्धारित कार्य विधि के अनुसार हुआ है या नहीं या इस प्रक्रिया में किसी व्यक्ति के अधिकारों का हनन तो नहीं हुआ है। यहां यह उल्लेखनीय है कि यह न्यायिक संरक्षण न केवल व्यक्ति को ही प्राप्त है अपितु स्वयं नगरीय संस्थाओं को भी

Scanned with CamScanner

नियंत्रण के प्रकार

नगरीय संस्थाओं पर, सभी लोकतांत्रिक राज्यों में सरकार के तीनों निकायों– व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका–द्वारा नियंत्रण किया जाता है। अतः इन संस्थाओं पर राजकीय नियंत्रण को निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत देखा जा सकता है :

1. विधायी नियंत्रण,
2. न्यायिक नियंत्रण,
3. प्रशासकीय नियंत्रण, और
4. वित्तीय नियंत्रण

इन चारों प्रकार के नियंत्रणों का, उसके क्रम में यत्किंचित् परिवर्तन के साथ, वर्णन किया जा रहा है। इसे चार्ट संख्या 15.1 द्वारा सरलता से आत्मसात् किया जा सकता है।

1. विधायी नियंत्रण : उपर्युक्त सभी प्रकार के नियंत्रणों में व्यवस्थापिका द्वारा किया जाने वाला नियंत्रण अधिक महत्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि स्थानीय संस्थाएं विधायिका के अधिनियम द्वारा ही अस्तित्व में आती हैं। विधायिका के इसी अधिनियम द्वारा इन संस्थाओं के कार्य का न केवल आधार तैयार किया जाता है अपितु उनके स्वरूप और कार्यकरण का एक परिवेश भी प्रस्तुत किया जाता है। एक ऐसी सस्था जो, स्थानीय निकायों से सम्बन्धित कानून बना सकती है, उसे संशोधित कर सकती है, और उसे रद्द कर सकती है, निश्चित ही स्थानीय संस्थाओं के संदर्भ में व्यापक नियंत्रण का उपयोग करने की स्थिति होती है। ब्रिटेन की भांति, जिन देशों में संविधान इन इकाइयों की प्रकृति को निर्धारित नहीं करता है, उन देशों में तो स्थानीय निकायों के शक्ति के स्रोत के रूप में विधि निर्मात्री संस्था विधायिका ही सर्वोच्च स्थिति में होती है।

जैसा कि इस अध्याय के आरम्भ में व्यक्त किया जा चुका है, स्थानीय शासन और उनकी इकाइयां राज्य सरकार की सृष्टि होती हैं। राज्य के विधानांग द्वारा पारित अधिनियम के आधार पर उसका निर्माण किया जाता है। राज्य विधान मंडल स्थानीय निकायों के सम्बन्ध में आवश्यक विधान पारित करके, संविधानों का संशोधन करके तथा उनके कार्यों पर विवाद और विचार–विमर्श करके उनको नियंत्रित करता है। राज्य विधान मंडल ही इन संस्थाओं को वैधानिक स्तर प्रदान करता है और इनके अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्धारण करता है। विधान मंडल द्वारा नगरीय कानूनों में परिवर्तन किया जा सकता है, उन्हें दी गई शक्तियां वापिस ले सकता है और समय–समय पर नए कर्तव्यों के निर्वाह के दायित्व सौंप सकता है। विधान सभा के सदस्य पालिका/निगम की विभिन्न गतिविधियों, उनके चुनावों, अधिक्रमण प्रशासकों की नियुक्ति, वित्तीय स्थिति, अनुदान तथा सामान्य प्रशासन एवं दैनिक प्रकृति की गतिविधियों, त्रुटियों आदि के लिए विधानसभा में सरकार से प्रश्न पूछकर विधायी

Scanned with CamScanner

भावात्मक है अन्यथा उसका कर्तव्य है कि वह स्थानीय निकायों को सक्रिय रूप से प्रोत्साहन दे और उनका विकास करे। किन्तु, राज्य का नियंत्रण इतना सूक्ष्म और व्यापक नहीं होना चाहिए कि स्थानीय निकायों की स्वायत्तता तथा स्वावलम्बन ही नष्ट हो जाए। राज्य के नियंत्रण का लक्ष्य यह होना चाहिए कि स्थानीय स्वशासी संस्थाएं प्रशासन के कुशल और प्रभावी उपकरणों के रूप में विकसित हो सकें और वे नीति निर्धारण तथा उसे क्रियान्वित करने में सफल हो सकें।[4]

इस प्रकार स्थानीय संस्थाओं की प्रशासकीय कुशलता के निमित्त उन पर नियंत्रण को आवश्यक मानने वाली यह विचारधारा निम्नांकित तर्क प्रस्तुत करती है :

1. स्थानीय शासन की संस्थाएं अनिवार्यतः सरकार की प्रशासनिक इकाइयां होती हैं जो कतिपय सेवाओं का निष्पादन करने के लिए गठित की जाती हैं;
2. इन संस्थाओं की पूर्णतः जांच इस दृष्टि से की जानी चाहिए कि कितनी मितव्ययता और प्रभावी तरीके से उन सेवाओं का निष्पादन कर रही हैं, जिनकी उनसे अपेक्षा की जाती है।
3. सरकार की स्थानीय शासन के प्रति नीतियों का विनिश्चय इस तरीके से किया जाता है कि उनके माध्यम से एक उत्तरदायी स्थानीय शासन के कार्यकरण को सुनिश्चित किया जा सके और इस हेतु उन पर पर्याप्त नियंत्रण रखा जा सके।
4. इसलिए उपर्युक्त कारणों से इन संस्थाओं पर सरकार वित्तीय और अन्य तरीकों से व्यापक नियंत्रण रख सकती है।

3. संतुलित विचारधारा : उक्त दोनों ही विचारधाराएँ दो अतिवादी दृष्टिकोणों पर आधारित प्रतीत होती हैं। यह कहा जा सकता है कि उक्त दोनों ही विचार दो विपरीत स्तम्भ हैं। वस्तुतः सार्थक और सही दृष्टिकोण इन दोनों विपरीत धाराओं का मध्यम मार्ग ही है। न तो स्थानीय संस्थाओं को किसी उदार लोकतांत्रिक दृष्टिकोण का अनुसरण करते हुए नियंत्रण से एकदम मुक्त किया जा सकता है और न ही दक्षता के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए इन संस्थाओं को इतना अधिक नियंत्रित किया जाना चाहिए कि वे अपना स्वायत्त अस्तित्व भी न रख सकें। **यद्यपि प्रशासनिक दक्षता और लोकतंत्रीकरण के बीच स्वाभाविक विरोध नहीं है फिर भी लोकतंत्र के लिए दक्षता को तिलांजलि नहीं दी जा सकती है।**

स्थानीय संस्थाओं की व्यवस्था सम्पूर्ण विश्व में पाई जाती है किन्तु कहीं भी ये संस्थाएं नियंत्रण से मुक्त पूर्णतः स्वायत्तशासी स्तर का उपयोग करती प्रतीत नहीं होती हैं।[5] आर. एम. जैक्सन ने भी यही माना है कि, "स्थानीय इकाइयां वास्तव में पूर्णतः स्वतंत्र नहीं हो सकतीं क्योंकि ऐसा होने से वे स्वयं राज्य बनकर स्थानीय शासन की परिधि से मुक्त हो जाएँगी।"[6]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नागरिकों के व्यापक हितों को ध्यान में

Scanned with CamScanner

प्रमाणित होता है कि राज्य सरकार ने इन संस्थाओं के स्वतंत्र विकास के लिए किसी तरह की सुव्यवस्थित कार्मिक नीतियों के विकास को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया है। इससे यह स्थिति स्पष्ट है कि पंचायती राज संस्थाओं में कार्मिक वर्ग की उचित व्यवस्था के लिए न तो राज्य सरकार चिन्तित है और न ही पंचायती राज की संस्थाओं को इस स्थिति की ओर कोई चिन्ता है। यहां यह व्यक्त करना भी आवश्यक है कि राज्य सरकार की इन संस्थाओं को नई–नई परियोजनाएं कार्यान्वित करने के लिए दे दी जाती है किन्तु इन परियोजनाओं के कार्यान्वयन हेतु जितना कार्मिक वर्ग उन्हें उपलब्ध कराया जाना चाहिए उसका एक हिस्सा भी उपलब्ध नहीं कराया जाता। स्थिति यह है कि एक लोक कल्याणकारी सरकार, गरीबों के हित में अपनाई जाने वाली और निर्मित की जाने वाली नीतियों तथा कार्यक्रमों को पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से कार्यान्वित तो करना चाहती है किन्तु उनके प्रभावी निष्पादन को सुनिश्चित करने के लिए वह सकारात्मक दिशा में सोचना भी नहीं चाहती।

इन संस्थाओं में कर्मचारियों के सेवा–संदर्भ में पंचायती राज संस्थाओं के पदाधिकारियों और अधिकारियों के द्वारा जो नीतियां अपनाई जाती हैं वे तो और भी अशक्त प्रतीत होती हैं। वैसे तो इन संस्थाओं में कार्यरत कर्मचारियों के लिए, राज्य सरकार के समान स्तरीय पदों पर कार्य करने वाले कर्मचारियों के लिए प्रवर्तित सेवानियमों को ही प्रभावी माना जाता है। किन्तु इन संस्थाओं में राजनीतिक आपाधापी और अधिकारियों के मनमानेपन की स्थिति यह है कि जब चाहे किसी कर्मचारी पर नाराज होकर उसे निलम्बित कर दिया जाता है और वर्षों तक उसे कोई आरोप–पत्र नहीं दिया जाता। निर्वाचित पदाधिकारियों का इतना आतंक रहता है कि सम्बन्धित कर्मचारी वर्षों तक अन्याय के विरुद्ध कोई लड़ाई भी शुरु नहीं कर पाते हैं। इन संस्थाओं के कर्मचारियों को नियमानुसार जो लाभ देय होना चाहिए उन लाभों को भी ये संस्थाएं कर्मचारियों को समय पर उपलब्ध नहीं करा पातीं। इस संदर्भ में सबसे विचित्र बात यह है कि इन संस्थाओं के कर्मचारियों की बीमारी इत्यादि पर व्यय की गई राशि का पुनर्भुगतान भी वर्षों तक लम्बित पड़ा रहता है। राज्य सरकार से जो अनुदान इत्यादि मिलता है वह वेतन एवं अन्य स्थापना व्यय के लिए स्वीकृत होता है। इस मध्य, बढ़ी हुई मंहगाई के निमित्त भत्तों और इसी प्रकार के अन्य परिलाभों के लिए राशि का प्रबन्ध इन सस्थाओं को अपने स्थानीय कोष से करना होता है। इन संस्थाओं की आर्थिक स्थिति ऐसी होती है कि उनका स्वयं का आर्थिक कोष प्रायः निर्बल होने से कर्मचारियों के उचित हितों का अथवा उन्हें देय लाभों का समय पर निस्तारण नहीं हो पाता। इससे कर्मचारियों का न केवल मनोबल टूटता है अपितु सामान्य तौर पर इन संस्थाओं के प्रति वे एक नकारात्मक वातावरण भी समाज में उत्पन्न करते है।

(v) अन्तर-संस्थागत विवादों का समाधान : संस्थागत नियंत्रण के अपने दायित्व के अन्तर्गत राज्य सरकार प्रायः सभी राज्यों में पंचायती राज की विभिन्न संस्थाओं के मध्य उत्पन्न आन्तरिक मतभेदों और विवादों को सुलझाने का काम भी करती है। अधिकांश राज्यों के अधिनियमों में राज्य सरकार को इन संस्थाओं के

Scanned with CamScanner

न्यायिक नियंत्रण करने वाली संस्थाओं के रूप में कार्यशील होता है। इसी तरह इन संस्थाओं पर प्रशासनिक नियंत्रण को कार्यान्वित करते समय राज्य की कार्यपालिका और उसके अधीनस्थ कार्यरत समूचा प्रशासन तंत्र, विशेष तौर से वे प्रशासनिक संस्थाएं जो इस हेतु निर्मित्त की गई हैं, सक्रिय होती है।

भारतवर्ष में नगर निगमों पर नियंत्रण का अधिकार प्रायः राज्य सरकार में अन्तर्निहित होता है और सभी राज्यों में मध्यस्तरीय वे प्राधिकारी जो आम तौर पर अन्य नगरीय संस्थाओं को नियंत्रित करते हैं, उनके नियंत्रण से नगर निगम मुक्त होता है। इसी संदर्भ में जिलाधीश और नगरीय शासन का निदेशालय नगर निगमों पर नियंत्रण की उस विधायी शक्ति से प्रायः वंचित होता है जो अन्य नगर निकायों के संदर्भ में उन्हें प्रदान की जाती है। इसका अभिप्राय यह है कि नगर निगमों पर प्रायः राज्य सरकार के स्वायत्त शासन विभाग द्वारा प्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित किया जाता है। नगर निगमों में इस स्थिति का अपवाद एक ही है। केवल दिल्ली नगर निगम एक ऐसा निगम है जिसका सृजन चूँकि केन्द्रीय संसद के अधिनियम द्वारा किया गया है इसलिए उस पर नियंत्रण भी केन्द्र सरकार द्वारा ही किया जाता है।[6]

नगर निगम के अतिरिक्त अन्य सभी नगरीय संस्थाओं पर प्रशासनिक नियंत्रण की विधि का सूत्रपात राज्य सरकार के स्वायत्त शासन विभाग से होता है। यह विभाग इन संस्थाओं के व्यवस्थित कार्य संचालन हेतु आवश्यक नीति बनाता है और राज्य भर में उसके निष्पादन के लिए समय-समय पर आवश्यक दिशा-निर्देश जारी करता है। राज्य सरकार के इस विभाग की प्रभावहीनता के विषय में यह कहा गया है कि इसके अन्तर्गत कोई भी व्यापक क्षेत्रीय इकाइयां नहीं हैं जो समय पर इन संस्थाओं का निरीक्षण तथा मार्गदर्शन कर सकें। यहीं नहीं विभिन्न राज्यों में राज्य के मुख्यालय पर भी ऐसी किसी विशिष्ट संस्था का अभाव अनुभव किया जाता रहा है जो इन संस्थाओं की तकनीकी विकास परियोजनाओं में सलाह या निर्देश दे सके।

नियंत्रण का प्रवर्तित परिवेश और स्वरूप

स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाएं चूंकि स्वायत्तशासी इकाइयां होती हैं इसलिए चिन्तकों की यह मान्यता दिनों-दिन बलवती होती जा रही है कि स्थानीय संस्थाओं को किस सीमा तक नियंत्रित किया जाना चाहिए और कभी-कभी तो यह प्रश्न भी उभरने लगता है कि इन्हें नियंत्रित भी किया जाना चाहिए या नहीं। किन्तु विचार विमर्श और विश्लेषण के पश्चात् इस संदर्भ में अंतिम मत यह उभरता है कि अनेक विधिक, राजनीतिक, प्रशासनिक और सामाजिक बाध्यताएँ हैं जिनके कारण सरकार का यह उत्तरदायित्व बनता है कि वह इन संस्थाओं को नियन्त्रित करे। विधिक दृष्टि से सरकार अपने ही द्वारा विनिर्मित अधिनियम के अंतर्गत बाध्य है कि इन संस्थाओं के व्यवस्थित कामकाज को सुनिश्चित करे। राजनीतिक दृष्टि से भी सरकार यह अनुभव करती है कि स्थानीय लोकतंत्र में इन संस्थाओं की निरन्तरता बनाई रखी जा सके। दूसरी ओर, इन संस्थाओं के सीमित आकार, सीमित आय के साधनों तथा

Scanned with CamScanner

को भंग करने की पुरानी परिपाटी से अपने आपको अलग कर लिया है।

किन्तु जयपुर नगर निगम में संविधान संशोधन के पश्चात् सन् 2000 में हुए द्वितीय निर्वाचन के पश्चात् एक दल विशेष के बहुमत में गठित निकाय को राज्य सरकार ने एक नूतन तरीका अपनाकर नियंत्रित करना आरम्भ कर दिया है जिसमें ऐसा प्रतीत होता है कि संविधान संशोधन के जरिए नगर निकायों पर राज्य सरकारों के मनमाने नियंत्रण की प्रक्रिया को रोकने के लिए जो उपाय किए गए थे वे निष्फल किए जा रहे हैं। आयुक्त या मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में राज्य सरकार द्वारा नियुक्त "अति उत्साही आई. ए. एस. अधिकारी" के माध्यम से निर्वाचित निकाय अर्थात् परिषद् और उसके पदाधिकारी मेयर व उप मेयर के लोकतांत्रिक महत्व को चुनौती दी जा रही है। निर्वाचित निकाय/पदाधिकारियों द्वारा की गई किसी शिकायत पर राज्य सरकार कोई कार्यवाही न कर लोकतांत्रिक संस्था की अपेक्षा नौकरशाही का पक्ष पोषण करती प्रतीत हो रही है। समीक्षक ऐसा अनुभव करते हैं कि एक दल की राज्य सरकार, दूसरे दल के निकाय के प्रति नियत्रण का जो उक्त तरीका अपना रही है उससे 74वें संविधान संशोधन द्वारा दिए गए स्थानीय निकायों के लोकतांत्रिक महत्व को अपूरणीय क्षति पहुँच रही है। आवश्यकता इस बात की है कि इन संस्थाओं पर नियंत्रण करते समय इनके लोकतांत्रिक स्वरूप को कोई क्षति नहीं पहुंचे। इस बात को सुनिश्चित करने की आवश्यकता सभी पक्षों को अनुभव करनी चाहिए।

सुधार हेतु सुझाव

यदि हम व्यावहारिक दृष्टि से विचार करें और राज्य के नियंत्रण को सार्थक बनाना चाहें तो नियंत्रण की इस व्यवस्था को राज्य सरकार में संस्थागत रूप देना होगा। राज्य सरकार के पास इन संस्थाओं के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के विषय में पूर्णतः चिन्तन होना चाहिए। नगरीय संस्थाओं के प्रति यदि राज्य सरकार की व्यापक नीति है तब ही नियंत्रण व्यवस्था सकारात्मक हो सकती है अन्यथा जैसी अभी परम्परा है, राज्य का नियंत्रण अस्थायी उद्देश्यों के लिए किसी भी प्रकार एवं किसी भी सीमा तक जारी रह सकता है।[17]

नगरीय संस्थाओं के सामान्यतः दो उद्देश्य होते हैं :

1. लोकतंत्र को सामान्य धरातल से विकसित होने में मदद देना, तथा
2. नगरों में रहने वाले नागरिकों के लिए कतिपय नागरिक सेवाओं का निष्पादन करना।

यदि इन दोनों लक्षणों के विषय में आम सहमति है तो यह कहा जा सकता है कि राज्य के नियंत्रण का उद्देश्य इन लक्ष्यों को प्राप्त करना ही तो है। यदि राज्य सरकार इन संस्थाओं के लिए सेवाओं के न्यूनतम स्तर का निर्धारण कर दे तथा एक समयबद्ध योजना इन संस्थाओं के कार्यकरण के लिए निश्चित कर दे तो इन पूर्व निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में यह संस्थाएँ कहां तक सफल रह पाई हैं, इस बात की जांच करने से ही राज्य के नियंत्रण को सकारात्मक दिशा मिल सकेगी।

Scanned with CamScanner

3. नियंत्रण के स्तर : पंचायती राज संस्थाओं पर देश के प्रायः सभी राज्यों में जिन संस्थाओं के द्वारा नियंत्रण किया जाता है वह लम्बवत् और समतल दोनों प्रकार का होता है। उदाहरणार्थ ग्राम पंचायत पर पंचायत समिति का तथा पंचायत समिति पर जिला परिषद् का तथा इन तीनों संस्थाओं पर राज्य सरकार का नियंत्रण लम्बवत् नियंत्रण की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसी प्रकार जिला स्तरीय इकाई जिला परिषद् पर जिला प्रशासन के नियन्ता जिलाधीश का नियंत्रण समतल नियंत्रण की श्रेणी में आता है। इस तरह पंचायती राज संस्थाओं पर विभिन्न इकाइयों के माध्यम से जो नियन्त्रण किया जाता है, उसके तीन स्तर– राज्य, क्षेत्रीय तथा स्थानीय हो – सकते हैं। यद्यपि आमतौर पर यह नियंत्रण जिला परिषद् के माध्यम से क्षेत्रीय रूप में और राज्य सरकार के माध्यम से राज्यस्तरीय अधिक होता है। स्थानीय स्तर के नियंत्रण के रूप में ग्रामसभा द्वारा ग्राम पंचायत के कार्यकलापों पर किए जाने वाले नियंत्रण को हम स्थानीय नियंत्रण की परिधि में सम्मिलित कर सकते हैं।

4. नियंत्रण के प्रकार : जहां तक पंचायती संस्थाओं पर नियंत्रण के विविध प्रकारों का सम्बन्ध है वह मुख्य रूप से चार प्रकार का होता है :(इसे अगले पृष्ठ पर दिए गए चार्ट में दर्शाया गया है) :

(अ) संस्थागत नियंत्रण।
(ब) प्रशासनिक नियंत्रण।
(स) तकनीकी नियंत्रण।
(द) वित्तीय नियंत्रण।

ग्रामीण स्थानीय निकायों पर नियंत्रण के इन चारों रूपों का अध्ययन की दृष्टि से, व्यवस्थित और विस्तृत विवरण देना यहां प्रासंगिक है

(अ) संस्थागत नियंत्रण : संस्थागत नियंत्रण से अभिप्राय उस नियंत्रण से है जो सरकार और उसके द्वारा अधिकृत संस्थाओं अथवा इकाइयों द्वारा किया जाता है। स्थानीय संस्थाओं के नाम, उनके क्षेत्र, सीमाओं, स्वायत्तता, क्षेत्राधिकार, संगठन और संरचना तथा उनके चुनाव इत्यादि के विषय में प्रावधान आमतौर पर राज्य सरकार द्वारा किया जाता है और समय–समय पर इन समस्त स्थितियों में उसी के द्वारा आवश्यक परिवर्तन भी किया जाता है। राज्य सरकार के, इन संस्थाओं के विषय में, इसी अधिकार को संस्थागत नियंत्रण कहा जाता है। यह सर्वविदित तथ्य है कि पंचायती राज संस्थाएँ अपने आप अस्तित्व में नहीं आती अपितु राज्य सरकार के निर्णय के अनुरूप राज्य की विधानसभा द्वारा इनके संगठनात्मक स्वरूप, क्षेत्राधिकार, कार्यक्षेत्र इत्यादि निश्चित किए जाते हैं। राज्य के विधान मंडल के अधिनियम और उसके अधीन विधि के माध्यम से जब इस प्रकार के प्रावधान किए जाते हैं तो इन प्रावधानों के परिवर्तन के पश्चात् यह भी सुनिश्चित करते हैं कि आने वाले वर्षों में उन प्रावधानों का उसी रूप में निरन्तर कार्यान्वयन भी होता रहे। राज्य की व्यवस्थापिका को इन संस्थाओं के संदर्भ में अपने ही द्वारा पारित पूर्व प्रावधानों में किसी भी समय

Scanned with CamScanner

संशोधन करने का अधिकार रहता है।

राज्य सरकार द्वारा इन संस्थाओं पर जो संस्थागत नियंत्रण किया जाता है, वह आमतौर पर इन संस्थाओं के निम्न पक्षों के विषय में होता है :

1. इन संस्थाओं का क्षेत्र और क्षेत्राधिकार,
2. शक्ति, संरचना और चुनाव का तरीका,
3. कार्यों की प्रकृति,
4. पंचायती राज कर्मचारियों की संख्या, वेतन और सेवा शर्तें,
5. अन्तर–संस्थागत विवाद और उनका समाधान,
6. पंचायती राज संस्थाओं के अभिलेखों, कागजों और सम्पत्ति सम्बन्धी नियंत्रण।

(i) पंचायती राज संस्थाओं के क्षेत्र व क्षेत्राधिकार का निर्धारण

पंचायती राज संस्थाएँ चूंकि हमारी प्रशासकीय संरचना की इकाइयां हैं, जो स्वतः विकसित नहीं होतीं अपितु जिनकी रचना के मूल में राज्य के विधान मंडल का कोई अधिनियम उत्तरदायी होता है। यही अधिनियम इनके भौगोलिक या सीमा सम्बन्धी क्षेत्राधिकार का निर्धारण करता है। अधिनियम में यह व्यवस्था होती है कि इन संस्थाओं की सीमा में कोई भी परिवर्तन राज्य सरकार या उसके द्वारा अधिकृत इकाई अपनी ओर से कर सकती है। भारत के प्रायः सभी राज्यों में इसी तरह की स्थिति पाई जाती है। राजस्थान पंचायत राज अधिनियम, 1994 राज्य सरकार को इस बात के लिए अधिकृत करता है कि वह इन संस्थाओं की संख्या घटा–बढ़ा सकती है और जब चाहे इनकी भौगोलिक सीमा में परिवर्तन कर अपने स्तर पर एक पक्षीय निर्णय ले सकती है।

(ii) शक्ति, संरचना व चुनाव के तरीकों का निर्धारण

इसी प्रकार पंचायती राज संस्थाओं के विभिन्न स्तरों पर गठित होने वाली इकाइयों की शक्तियों, संगठन और चुनाव की विधियों का निर्धारण भी उसी अधिनियम के माध्यम से किया जाता है जिसके द्वारा इन संस्थाओं की रचना की जाती है। सभी अधिनियम यह प्रावधान करते हैं कि किस संस्था के कितने सदस्य जनता द्वारा चुने जाएँगे, सदस्यों के चुनाव की विधि क्या होगी, कार्यकाल क्या होगा, आरक्षण कितना होगा, इत्यादि सभी बिन्दु अधिनियम द्वारा ही निर्धारित किए जाते हैं।

(iii) कार्यों की प्रकृति का निर्धारण

जहां तक पंचायती राज संस्थाओं द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले कार्यों का सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध में यह अनुभव किया गया है कि पंचायती राज की संस्थाओं के द्वारा निष्पादित किए जाने वाले कार्यों का निर्धारण प्रायः सम्बन्धित अधिनियम के माध्यम से राज्य सरकार द्वारा किया जाता है। अब तो 73वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में 11वीं अनुसूची जोड़कर पंचायत राज संस्थाओं द्वारा किए

का समाधान
— अभिलेखों व सम्पत्ति पर नियन्त्रण
— संस्थाओं को निलम्बित एवं या निरस्तीकरण भंग करना

Scanned with CamScanner

चार्ट - 15.1

नगरीय संस्थाओं पर राज्य का नियन्त्रण